हम कभी
दम्भी न
बनें
गांधीजी के जीवन के प्रेरणादायक प्रसंग
मेरा जीवन ही मेरा संदेश है

हम कभी दंभी न बनें

गांधीजी के प्रेरणादायक प्रसंग

●

सम्पादक
विष्णु प्रभाकर

●

१९८१

सस्ता साहित्य मंडल,
श्रीकृष्ण जन्म-स्थान सेवा-संस्थान
का संयुक्त प्रकाशन

•

प्रकाशकीय

महात्मा गांधी उन महापुरुषों में से थे, जिन्होंने मनुष्य के चरित्र को सबसे अधिक महत्व दिया। वह मानते थे कि समाज की बुनियादी इकाई मनुष्य है। यदि वह अपने को सुधार ले तो समाज अपने आप सुधर जायगा।

अपनी इस मान्यता को व्यक्त करने से पहले उन्होंने अपने जीवन को कसौटी पर कसा : सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य आदि ग्यारह व्रतों का पालन किया और दूसरों द्वारा किये जाने का आग्रह रखा। दैनिक जीवन की छोटी-से-छोटी और बड़ी-से-बड़ी बातों में वह बराबर जागरूक रहे और अपने सिद्धान्तों पर दृढ़तापूर्वक चलते रहे।

इस पुस्तक-माला की दस पुस्तकों में उनके जीवन के चुने हुए प्रसंग दिये गये हैं। ये प्रसंग इतने रोचक, शिक्षाप्रद तथा प्रेरणादायक हैं कि कोई भी पाठक उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता।

ये पुस्तकें गांधी जन्म-शताब्दी वर्ष में प्रकाशित हुई थीं। हाथों-हाथ बिक गयीं। कुछ के नये संस्करण हुए। कुछ के नहीं हो पाये। कागज और छपाई के दामों में असामान्य वृद्धि हो जाने के कारण उन्हें सस्ते मूल्य में देना असंभव हो गया। पर पुस्तकों की मांग निरन्तर बनी रही।

हमें हर्ष है कि अब यह पुस्तक-माला 'सस्ता साहित्य मंडल' तथा 'श्रीकृष्ण जन्म-स्थान सेवा-संस्थान' के संयुक्त प्रकाशन के रूप में निकल रही है। उसके प्रसंग कम नहीं किये गये हैं, पृष्ठ उतने ही रखे गये हैं, फिर भी मूल्य कम-से-कम रखा गया है।

हमें आशा ही नहीं, पूरा विश्वास है कि पाठक इस पूरी पुस्तक-माला को खरीदकर मनोयोगपूर्वक पढ़ेंगे और इससे अपने जीवन में भरपूर लाभ लेंगे।

—मंत्री

भूमिका

जो बात उपदेशों के बड़े-बड़े पोथे नहीं समझा सकते, वह उन उपदेशों में से किसी एक को भी जीवन में उतारने से समझ में आ जाती है इसलिए गांधीजी कहते थे कि मेरा जीवन ही मेरा सन्देश है। उनके जीवन का यह सन्देश उनके दैनन्दिन जीवन की घटनाओं में प्रदर्शित और प्रकाशित होता है।

संसार के तिमिर का नाश करने के लिए मानव-इतिहास में जो व्यक्ति प्रकाश-पुंज की भांति आते हैं उनका सारा जीवन ही सत्य और ज्ञान से प्रकाशित रहता है। गांधीजी के जीवन में यह बात साफ दिखाई देती है। इस पुस्तक-माला में गांधीजी के जीवन के चुने हुए प्रसंगों का संकलन करने का प्रयास किया गया है। उनका प्रकाश काल के साथ मन्द नहीं पड़ता। वे क्षण में चिरन्तन के जीवन के किसी पहलू को प्रदर्शित करते हैं। उनकी प्रेरणा स्थानीय न होकर विश्वव्यापी है।

ये प्रसंग गांधीजी के जीवन से सम्बन्धित प्रायः सभी पुस्तकों के अध्ययन के बाद तैयार किये गए हैं। हर प्रसंग की प्रामाणिकता की पूरी तरह रक्षा की गई है। फिर भी वे अपने आपमें सम्पूर्ण और मौलिक है।

यह पुस्तक-माला अधिक-से-अधिक हाथों में पहुंचे तथा भारत की सभी भाषाओं में ही नहीं, वरन् संसार की अन्य भाषाओं में भी इसका अनुवाद हो, ऐसी अपेक्षा है। मैं आशा करता हूं कि यह पुस्तक-माला अपनी प्रभा से अनगिनत लोगों के जीवन को प्रेरित और प्रकाशित करेगी।

रंगनाथ दिवाकर

विषय-सूची

विचार जबतक ग्राचरण के रूप में प्रकट नहीं होता, वह कभी पूर्ण नहीं होता। ग्राचरण आदमी के विचार को मर्यादित करता है। जहां विचार और ग्राचार के बीच पूरा-पूरा मेल होता है, वहीं जीवन भी पूर्ण और स्वाभाविक बन जाता है।

मो० क० गांधी

हम कभी
दम्भी
न बनें

हम कभी दम्भी न बनें

नडियाद में विट्ठल कन्या विद्यालय के छात्रालय का उद्घाटन करते समय गांधीजी जितने गम्भीर थे, वहां की बालिकाओं के साथ बातें करते हुए उतने ही विनोद-प्रिय हो उठे। रेंटिया बारस के दिन जो सूत काता था, बालिकाएं वही गांधीजी को अर्पण करने के लिए आई थीं। उनसे बातें करते हुए गांधीजी बोले, "तुम्हें मालूम है कि जमनालालजी ने आज तुम्हारा छात्रालय खोला है ? जमनालालजी जैसे अच्छे मनुष्य के योग्य बनने का तुम्हें प्रयत्न करना चाहिए। तुम्हें यह मालूम है न कि वह एक अच्छे आदमी हैं ?"

लड़कियों ने उत्तर दिया, "हां !"

गांधीजी बोले, "हां, नहीं, जीहां कहना चाहिए।"

बालिकाएं एक स्वर में बोल उठीं, "जीहां।"

गांधीजी ने पूछा, "अगर वह अच्छे आदमी हैं, तो और दूसरे आदमी कैसे हैं ?"

"सब अच्छे हैं।"

"तुम नहीं क्या ?"

"हम भी अच्छे हैं।"

"तुम्हें विश्वास है कि सभी अच्छे हैं ?"

"जीहां।"

"अच्छा, तब यह बताओ कि तुममें से कोई लड़की झूठ बोलती है या नहीं ?"

कुछ लड़कियों ने कहा, "हम बोलती हैं।"

"हमेशा या कभी-कभी ?"

"कभी-कभी।"

"और तुम लड़ती नहीं हो ?"

"लड़ती हैं।"

"हमेशा ?"

"जीहां।"

यह सुनकर सब लोग अट्टहास कर उठे। गांधीजी बोले, "ठीक। तब मुझे तुमसे कहना चाहिए कि तुम जो अच्छी हो, इसका कारण यह है कि तुम कभी-कभी झूठ बोलती हो और आपस में लड़ती-झगड़ती हो। यह बात तुम स्वीकार करती हो। हम बाकी लोग भी इतना करें तभी अच्छे आदमी कहे जा सकते हैं। पर उनके बारे में तुम क्या कहती हो, जो यह कहते हैं कि सच सबको बोलना चाहिए, पर खुद कभी सच नहीं बोलते ?"

लड़कियों ने उत्तर दिया, "उन्हें तो दम्भी कहना चाहिए।"

गांधीजी बोले, "ठीक। हम कभी दम्भी न बनें। अब एक प्रश्न और पूछना है। तुमने इस वर्ष एक लाख गज सूत कातने की प्रतिज्ञा की। यह प्रतिज्ञा तुमने तोड़ दी तो ?"

बालिकाओं ने जोर देते हुए कहा, "हम तोड़ेंगी ही नहीं।"

"पर तोड़ दी तो ?"

"टूटेगी ही नहीं।"

"पर मान लो कि टूट गई तब ?"

एक लड़की बोली, "तब उपवास ।"

गांधीजी बोले, "उपवास कौन करेगा—मैं या तुम ?"

लड़कियां बोलीं, "हम—हम ।"

"दूध-फल खाकर उपवास करोगी ?"

"जी नहीं, सिर्फ पानी ही पीयेंगी ।"

"पर उपवास कबतक का ?"

"जबतक अपने हिस्से का सूत नहीं कात लें ।"

गांधीजी बोले, "यह तो बहुत ही अच्छा है । पर देखो, यहां अखबारवाले बैठे हैं । ये लोग हमारी ये सब बातें अखबारों में छापेंगे, इसलिए अगर तुमसे पूरा सूत न कत सका, तो फिर पछताओगी ।"

: २ :

मैं कहता हूं इसीलिए कोई काम. . .

डाण्डी-यात्रा के समय साबरमती-आश्रम से जाते समय गांधीजी ने प्रतिज्ञा की थी, "भले ही कुत्ते या कौवे की मौत मर जाऊं, लेकिन स्वराज लिये बिना आश्रम में वापस नहीं आऊंगा ।"

उनके साथियों ने भी ऐसी ही प्रतज्ञा ली । उनमें कोई बहन नहीं थी । उन्होंने गांधीजी से कहा, "इस युद्ध में हमें भी स्थान मिलना चाहिए ।" पहले तो वह झिझके, लेकिन बाद में वह

उनसे सहमत हो गये। उनके लिए भी एक प्रतिज्ञा-पत्र तैयार किया गया। आश्रम की अनेक बहनों ने प्रतिज्ञा ली, लेकिन एक बहन ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया और गांधीजी को अपनी असमर्थता का कारण भी बता दिया।

प्रतिज्ञा का रहस्य समझाते हुए गांधीजी ने उस बहन से कहा, "ऐसे अवसर पर तुम्हारे प्रतिज्ञा न लेने से मुझे दुःख होगा। यदि प्रत्येक सैनिक अपनी इच्छा के अनुसार चले तब सेनापति का क्या होगा ?"

और भी दलीलें गांधीजी ने दीं। उत्तर में वह बहन इतना ही बोली, "आपकी बात मैं अच्छी तरह समझती हूं। प्रतिज्ञा का सूक्ष्म अर्थ मेरे लिए मन, वचन, कर्म से स्वराज्य के लिए लिया जानेवाला संन्यास है। अभी मेरी स्थिति ऐसी नहीं है कि मैं चौबीसों घंटे इस प्रतिज्ञा को जी सकूं। ऐसी स्थिति में यदि मैं प्रतिज्ञा लेती हूं, तो वह अपनेको और आपको धोखा देना होगा। अभीतक के मेरे संस्कार ऐसे हैं कि मैं शायद बिना प्रतिज्ञा लिये ही अपना अधिक विकास कर सकूंगी।"

यह सब सुनकर गांधीजी बोले, "इस वक्त तेरे प्रतिज्ञा न लेने से मुझे दुःख तो हो रहा है, लेकिन तेरी हिम्मत के लिए मैं तुझे धन्यवाद देता हूं। 'मैं कहता हूं' इसीलिए कोई काम किया जाय तो मुझे संतोष नहीं होगा।"

मैं आपको काफी काम बताऊंगा

गोलमेज-परिषद में भाग लेने के लिए गांधीजी जब इंग्लैंड गये थे, तो बर्मिंघम भी गये थे। वहां डा० पारधी रहते थे। वह सुप्रसिद्ध सर्जन थे। उनकी धर्मपत्नी एक अंग्रेज महिला थीं और भारत की सेवा करने में उनकी बड़ी रुचि थी।

डा० पारधी ने वहां के सब भारतीयों को गांधीजी से मिलने के लिए अपने घर पर आमंत्रित किया। बातचीत के समय किसीने कहा, "आप हमें क्या संदेश देते हैं?"

गांधीजी बोले, "आप मुट्ठीभर भारतीयों पर, जो यहां रहते हैं, भारत की गौरव-रक्षा का भार है। अतः आप सतर्क रहकर काम करें।"

एक सज्जन ने पूछा, "हम भारत की सेवा किस तरह कर सकते हैं?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "आप अपनी बुद्धि और चातुर्य को पैसा कमाने में लगाने के बजाय देश की सेवा में लगायें। यदि आप चिकित्सक हैं, तो भारत में रोगियों की कमी नहीं है। यदि आप वकील हैं, तो झगड़े निपटाने के बहुत अवसर हैं। यदि आप इंजीनियर हैं, तो आप देशवासियों की आवश्यकता और सामर्थ्य के अनुसार स्वच्छ, हवादार नमूने के मकान बनाइये। जो कुछ ज्ञान आपने यहां प्राप्त किया है,

वह देश के हित में लगाया जा सकता है।"

उन्हीं मित्र ने फिर पूछा, "मैं चार्टर्ड अकाउन्टेन्ट हूं। मैं क्या कर सकता हूं ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "श्री कुमारप्पा आपकी ही तरह अकाउन्टेन्ट हैं। वह जो काम करते हैं, वही आप भी कीजिए। कांग्रेस और उससे संबंधित संस्थाओं के आय-व्यय-निरीक्षण के लिए सुयोग्य अकाउन्टेन्ट की आवश्यकता है। आप भारत आइये, मैं आपको काफी काम बताऊंगा और प्रतिदिन चार आने के हिसाब से, जो करोड़ों भारतीयों की आय से अधिक है, आपको फीस दिलवाऊंगा।"

। ४ ।

तो हम सब यहां से हट जायं

सन् १९२१ में कांग्रेस का अधिवेशन अहमदाबाद में हुआ था। कलकत्ता के एक कार्यकर्त्ता श्री बडे गो-रक्षा में बहुत दिलचस्पी लेते थे। वह भले और सच्चे व्यक्ति थे। जिस समय महासमिति की बैठक हो रही थी, किसीने गो-हत्या बन्द करने के संबंध में एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया। अध्यक्ष के पद पर हकी अजमल खां विराजमान थे और गांधीजी उनकी मदद कर रहे थे। उन्होंने राय दी, यह प्रस्ताव कांग्रेस में लाना ठीक नहीं होगा।

लेकिन बडे साहब इस बात पर तुले थे कि यह प्रस्ताव

पेश होना ही चाहिए। अध्यक्ष महोदय ने बार-बार बैठ जाने की प्रार्थना की, लेकिन वह टस-से-मस नहीं हुए। तब विवश होकर अध्यक्ष बोले, "आप मेरा आदेश नहीं मानते हैं, तो सभा छोड़कर चले जाइये।"

बडे साहब ने उत्तर दिया, "मैं नहीं जाऊंगा।"

अब तो सभा में हलचल मच उठी। आखिर क्या किया जाय ? क्या इन्हें पकड़कर हटाया जाय या पुलिस को बुलाया जाय ? किन्तु गांधीजी ने एक नया ही उपाय खोज निकाला। खड़े होकर बोले, "मैं सब सदस्यों से अनुरोध करता हूं कि यदि श्री बडे सभा-स्थान से नहीं हटते, तो हम सब यहां से हट जायं।"

बस दूसरे क्षण सभी लोग वहां से उठकर चले गये। अकेले बडेसाहब हतप्रभ से वहां खड़े रहे।

: ५ :

मेरी गलती नजरअन्दाज मत करना

१९३० में कुछ समय के लिए काकासाहब गांधीजी के पास यरवदा-जेल में रहने के लिए आये थे। उन दिनों वहां समय भी था और सुविधा भी। यह देखकर गांधीजी ने संस्कृत श्लोकों का अपना उच्चारण ठीक करने का निश्चय किया। काकासाहब से उन्होंने कहा, "मैंने तुमको आश्रम के लड़कों को पढ़ाते देखा है। तुम्हारे उच्चारण पर मैं मोहित

हूं। मैंने अपना उच्चारण सुधारने का निश्चय किया है। जहां मेरा उच्चारण गलत हो, वहां मुझे टोको। मैं महात्मा हूं, इसलिए मेरी गलती नजरअन्दाज मत करना। ऐसा करके मेरे उच्चारण में कच्चापन रहने दोगे तो, उसका पाप तुम्हारे सर पर होगा। मुझे विद्यार्थी समझकर उच्चारण में एक भी दोष रहे, तबतक मुझे सुधारते ही जाओ।"

काकासाहब ने ऐसा ही किया। वह बार-बार एक श्लोक को बोलते और फिर गांधीजी उसे दोहराते। उस समय काकासाहब उन्हें उनकी गलती बताते। जहां वह दोष बताते वहां पुस्तक पर गांधीजी पेंसिल से एक बारीक निशान लगा देते और उतने हिस्से को बार-बार सुनते थे। एक ही पंक्ति या शब्द को काकासाहब बार-बार बोलते ऊबते नहीं थे, क्योंकि वह जानते थे कि बार-बार सुनाकर कान भर देना, यही शुद्ध उच्चारण सिखाने का एकमात्र प्राकृतिक नियम है। बच्चे इसी ढंग ने सीखते हैं।

गांधीजी के साथ कठिनाई यह थी कि वह वर्षों से गलत उच्चारण करते आ रहे थे। इसके अतिरिक्त गुजराती लोग ह्रस्व 'अ' का बहुत बार गलत उच्चारण करते हैं। और भी इसी प्रकार की कई गलतियां करते हैं। इसीलिए शुरू-शुरू में गांधीजी को कुछ कठिनाई हुई, लेकिन जहां एक बार उन्होंने सही उच्चारण समझ लिया, वहां फिर उन्होंने कभी गलती नहीं की। शीघ्र ही वह शुद्ध रूप से श्लोक बोलने का आनन्द लेने लगे।

आखिर कभी तो हिंसा की भूख शांत होगी

सन् १९३६ में सन्त तुकड़ोजी महाराज एक महीने के लिए गांधीजी के पास रहने के लिए आये। गांधीजी ने उनके रहने की व्यवस्था अपने पास ही की। सन्त तुकड़ोजी के कीर्तन में भक्ति-भाव से भगवान का हृदयस्पर्शी गुणगान होता था। श्रोतागण मंत्रमुग्ध हो जाते थे। प्रतिदिन सैकड़ों व्यक्ति इसी-लिए सेवाग्राम आया करते थे। प्रार्थना के बाद वह खड़े होकर अपने गुरुदेव की प्रतिदिन नियमपूर्वक आरती उतारते थे। गांधीजी का इतनी देर तक एक आसन में खड़े रहना आश्रम-वासियों को बहुत अखरता था। लेकिन वह तो नियम-पालन में बहुत विश्वास रखते थे। इसलिए सीधे ध्यानमग्न खड़े रहते थे। उन्हें सन्त तुकड़ोजी का एक भजन बहुत ही प्रिय था। कहते थे, यह भजन मेरी ही जीवन-कथा का द्योतक है :

किस्मत से राम मिला जिसको, उसने यह तीन जगा पाई।
पहले तो धन सुत दार गया, अरु शाल दुशाला छूट गया।
सब मंजिल हाथी घोड़ों से, नहीं पास रहा साधन कोई।
दूजे से जग अपमान हुआ, अरु आदर तो सब जाय भगा।
नहीं कीमत जात बिरादर में, साथी न रहा कुछ समझाई।
तीजे से आफत तन भोगी, दिन-रात रहा जैसे रोगी।

नैनों से सुख नहीं देखा, सब उमरी दुख में जा खोई।
ये तीनहुं से कंगाल हुआ, पर याद उसीकी करता था।
बिन नाम प्रभु के झूठ सभी, यह भाव हमेशा नैन रही।
ये तीन जगह जिसको न मिलीं, उसको न कभी दीदार हुआ।
कई जन्म जरा भरते-भरते, तुकड्या को गुरुपद यह छाई।

इतना ही नहीं, वह सन्त तुकड़ोजी महाराज से विचार-विनिमय भी किया करते थे। ऐसे ही एक दिन उन्होंने अपनी बात समझाने के लिए एक दृष्टांत सुनाया—'एक गरीब और एक धनिक का घर पास-पास था। एक दिन गरीब के घर में चोर आ घुसे। सहसा गरीब की आंख खुल गई। उसने देखा कि चोर उसके घर में कुछ ढूंढ़ रहे हैं। उसने सोचा—ये बेचारे व्यर्थ ही परेशान होंगे, क्योंकि उनको यहां कुछ मिलनेवाला नहीं है। बस, वह उठा और चोरों से बोला, 'आप अधिक परेशान हों, जो कुछ मेरे पास है वह मैं आपको दिये देता हूं।'

यह कहकर जो दस-पांच रुपये उसके पास थे वे चोरों को दे दिये। चोरों को विस्मय तो हुआ, लेकिन वे ठहरे लोभी। अधिक धन पाने के लालच में वे धनिक के घर पहुंच गये। वह धनिक भी जाग रहा था और उनकी सब बातें सुन चुका था। उसे आश्चर्य हो रहा था कि चोर उस गरीब के घर से खाली हाथ ही जानेवाले थे। लेकिन उसने अपने हाथ से अपनी सारी रकम चोरों के हवाले कर दी। मैं भी ऐसा ही क्यों न करूं ?

और उसने ऐसा ही किया। अपना सारा धन चोरों के सामने लाकर रख दिया। यह देखकर चोर चकित रह गये।

उनके मन में जैसे राम जाग उठा हो। वे उस धनिक और गरीब का सारा धन छोड़कर चले गये और साधु हो गये।

यह दृष्टांत सुनाकर गांधीजी बोले, "मैं हिंसा के मुख में अहिंसा को इसी तरह झोंक देना चाहता हूं। आखिर कभी तो हिंसा की भूख शांत होगी ही। अगर दुनिया को शांति से जीना है, तो मेरे ज्ञान में इसका दूसरा कोई और रास्ता नहीं है। आप अपनी सीधी-सादी भाषा में अपने मधुर भजनों द्वारा देहात की जनता तक अहिंसा के इस संदेश को पहुंचा सकें तो मेरा बहुत बड़ा काम हो।"

: ७ :

यह कहकर पीना कि. . .

एक लड़का था। चरित्र उसका बहुत अच्छा था। गांधीजी के निकट भी था, लेकिन उसके मन में सिगरेट पीने की तीव्र आकांक्षा थी। वह जानता था कि यह बुरा काम है। बार-बार अपने मन में तर्क करता था, "अरे, मैं बापू के इतना निकट हूं, क्या मुझे सिगरेट पीनी चाहिए ?"

लेकिन उसके मन ने उसका साथ नहीं दिया। वह परेशान हो उठा और अन्त में गांधीजी के पास पहुंचा। सब कहानी उसने कह सुनाई और बोला, "बापूजी, मैं क्या करूं ? बहुत परेशान हूं। मन को बहुत समझाता हूं, लेकिन वह मानता नहीं। मैं चाहता हूं, सिगरेट न पीऊं, लेकिन वह ज़िद

करता है।"

गांधीजी ने सहज भाव से उत्तर दिया, "तो तेरा मन नहीं मानता ! अच्छा, तू सिगरेट पी, लेकिन यह कहकर पीना कि गांधीजी ने मुझे इज़ाज़त दी है।"

लेकिन क्या उस लड़के ने सिगरेट पी ? गांधीजी उसकी ढाल बन गये थे, फिर भी वह पी नहीं सका। उनका नाम लेकर पीने से उनकी बदनामी जो होती और यह उसे स्वीकार नहीं था।

: ८ :

जो ले गये होंगे वे खाने के काम में ही तो लेंगे

नोआखाली-यात्रा में २२ फरवरी, १९४७ के दिन गांधीजी पनियाला में थे। उसी दिन बा का मृत्यु-दिवस था। प्रार्थना के बाद उन्होंने पूरी गीता का पारायण किया। उसके बाद गांधीजी के लिए पेय तैयार करने को मनु ने पानी गर्म किया, लेकिन तभी पता लगा कि शहद की बोतल गायब हो गई है। रात को उसने सबकुछ तैयार करके रखा था। सुबह देखा तो बोतल वहां नहीं थी। शायद कोई उठा ले गया हो।

सौभाग्य से अनुदीदी के पास अच्छा गुड़ था। उसीको गर्म पानी में डालकर मनु ने नीबू निचोड़ा। उसे पीते समय गांधीजी को जब इस बात का पता लगा, तो उन्होंने सहज

भाव से कहा, "कोई बात नहीं, जो ले गये होंगे, वे उसे खाने के काम में ही तो लेंगे। हमारा काम गुड़ से अच्छी तरह चल जाता है। अब बोतल कौन ले गया है, इसकी जांच कराने के झगड़े में मत पड़ना।"

: ९ :

स्नेही आश्रमवासियों को मैंने अपना संबंधी ही माना है

अप्रैल, १९४४ में आगाखां-महल में नजरबन्दी के समय गांधीजी मलेरिया से पीड़ित थे। इस समय उनके संबंधियों ने सरकार से उनसे मुलाकात करने की मांग की थी। उसी संबंध में श्री जमनादास गांधी उनसे मिलने के लिए आयें। भीतर-बाहर के वह बहुत-से समाचार भी लाये थे, लेकिन गांधीजी को यह सब अच्छा नहीं लग रहा था। बोले, "जमनादास 'गांधी' हैं (अर्थात गांधी-परिवार के हैं), इसलिए उसे इजाजत मिल गई, और आश्रमवासियों को, जो मेरे संबंधियों से भी अधिक हैं, उन्हें इजाजत नहीं मिली।"

वह यह कहकर ही शांत नहीं हुए। उन्होंने तुरन्त सरकार को एक पत्र लिखवाया :

"भविष्य में कोई अधिक निराशाजनक परिणाम न हो, इसके लिए मैं जमनादास से मिला तो सही, परन्तु मैंने अपने लिए एक दूसरा ही नियम बनाया है। जिन स्नेही आश्रम-

वासियों को मैंने अपना संबंधी माना है, वे यदि गांधी-परिवार के न होने के कारण यहां नहीं आ सकते, तो गांधी-परिवार-वालों से मिलने का मोह भी मुझे छोड़ देना चाहिए, यद्यपि उनसे मिलना मुझे अच्छा लगता है। मैं मानता हूं कि मेरे उपवास के समय मुझे हरेक से मिलने की जो छूट दी गई थी, उसका कोई विपरीत परिणाम नहीं हुआ। तब क्या मेरी तबियत अच्छी न हो जाय तबतक सरकार वैसा ही फिर कर सकेगी ?"

लेकिन ऐसा करने की कोई आवश्यकता ही नहीं हुई, क्योंकि यह पत्र लिखने के चौथे दिन ही उनकी मुक्ति का आदेश आ गया।

: १० :

मुझे कैदी के नियमों का पालन करना चाहिए

जिस समय डाक्टरों ने यह निश्चय किया कि आपरेशन करना ही होगा तब गांधीजी से पूछा गया कि क्या वह किसी से मिलना चाहेंगे ? उन्होंने जिन तीन-चार व्यक्तियों के नाम दिये, उनमें माननीय श्रीनिवास शास्त्री भी थे। शास्त्रीजी गांधीजी से मिलने के लिए आये। वे दोनों आपस में बातें कर ही रहे थे कि डा० फाटक आपरेशन कराने के लिए महात्माजी की सम्मति प्रकट करनेवाले बयान का मसविदा लेकर

आगये। उसे पढ़ लेने के बाद गांधीजी ने कहा, "मैं चाहता हूं कि कुछ स्थानों पर इसकी भाषा बदली जाय।"

कर्नल मॅडक उस समय वहींपर थे। उन्होंने कहा, "इसे अच्छी भाषा में रखने के लिए गांधीजी ही समर्थ हैं।"

महात्माजी बयान लिखवाने लगे और माननीय शास्त्रीजी लिखने लगे। उन्होंने कर्नल मॅडक और उनके आदमियों के प्रति प्रेम का उल्लेख किया। उनपर अपना पूरा विश्वास प्रकट किया और सरकार का आभार भी माना कि उसने अपने डाक्टरों को बुलाने की स्वतन्त्रता दी। प्रयत्न करने पर भी वे नहीं आ सके, यह दूसरी बात है। अधिक देर हो जाने पर संकट आ सकता है, इस कारण उन्होंने तुरन्त आपरेशन करने का अनुरोध किया।

यह बयान कर्नल मॅडक को सुनाया, तो वह संतुष्ट होकर बोले, "निःसन्देह, आप ही इसे उचित रूप दे सके।"

फिर गांधीजी ने उसपर हस्ताक्षर किये। उनका हाथ बुरी तरह कांप रहा था। वह 'आई' पर बिन्दी तक नहीं लगा सके। बोले, "मेरा हाथ कितना कांप रहा है, यह आपने देखा। इसे अच्छा करना होगा।"

कर्नल मॅडक ने उतर दिया, "अरे, हम तो आपको पहलवान-जैसा बना देंगे।"

डाक्टर लोग चले गये। कमरे में रह गये केवल शास्त्रीजी। उन्होंने पूछा, "आपको कोई खास बात कहनी है?"

गांधीजी ने कहा, "आपरेशन हो जाने के बाद मुझे छोड़ देने के लिए कोई हलचल हो, यह मैं नहीं चाहता। हो भी तो

वह ठीक ढंग से हो। सरकार के साथ मेरा झगड़ा ज्यों-का-त्यों जारी है। जबतक वह झगड़ा कायम है, मुझे छोड़ने के लिए कोई शर्त हो ही नहीं सकती। यदि सरकार मानती है कि मैं निर्दोष हूं, उसके साथ मेरे गहरे झगड़े होने पर भी मैं अंग्रेजों को चाहता हूं, तो वे भले ही मुझे छोड़ दें, परन्तु गलत कारण से नहीं। शायद मेरी भाषा ठीक नहीं है। आप उसे अपनी अप्रतिम भाषा में रखिए।"

कुछ और इधर-उधर की बातें करने के बाद शास्त्रीजी ने गांधीजी से आग्रह किया कि वह अपने अनुयायियों अथवा देश के लिए कोई संदेश दें।

दृढ़ स्वर में गांधीजी बोले, "मैं सरकार का कैदी हूं और मुझे कैदी के नियमों का पालन सम्मानपूर्वक ढंग से करना चाहिए। समाज की दृष्टि से मैं मरा हुआ ही माना जाऊंगा। मुझे बाहर की घटनाओं का कुछ भी पता नहीं। मेरा लोगों के साथ किसी प्रकार का संबंध हो ही नहीं सकता। इसलिए मेरे पास कोई सन्देश नहीं है।"

: ११ :

हमारे जीवन भी बिना ताल के हो गये हैं

एक दिन गांधीजी अहमदाबाद में विक्टोरिया बाग के समीप ईसाइयों के एक गिरजे में गये। वहां उन्होंने उनका तालमय संगीत सुना। बहुत अच्छा लगा। आश्रम लौटकर

प्रार्थना के समय उन्होंने इस घटना की चर्चा करते हुए कहा, "जब मैं उनके सुरीले संगीत के साथ अपने बिना लय के संगीत की तुलना करता हूं, तो मुझे बड़ी शर्म आती है। जिस तरह हमारे संगीत में से ताल चला गया, उसी तरह हमारे जीवन भी बिना ताल के हो गये हैं।"

गांधीजी की इस वेदना ने सबके मन को छुआ। डा० हरिप्रसाद देसाई ने उत्तर दिया, "आप आश्रम के लिए किसी अच्छे संगीत-शास्त्री को बुलाइये। क्यों न आप श्री विष्णु-शास्त्री दिगम्बर को लिखें ?"

गांधीजी बोले, "मैंने ऐसा ही किया है। मैं उन्हें पत्र लिख चुका हूं।"

इसी पत्र के परिणामस्वरूप पं० नारायण मोरेश्वर खरे आश्रम में आये और जबतक जीवित रहे, वह अपने संगीत द्वारा आश्रम की और गुजरात की सेवा करते रहे।

: १२ :

वे इस्लाम के सच्चे प्रतिनिधि नहीं हैं

नन्दी (बेंगलोर) प्रवास के समय मिलने आनेवालों में पोलेंड का एक विद्यार्थी भी था। अन्दर आकर वह एक क्षण के लिए गांधीजी के सामने बैठा रहा। परन्तु जाते समय उसने अपनी जेब से एक फोटो निकाला। उसपर वह गांधीजी के हस्ताक्षर करवाना चाहता था।

गांधीजी ने पूछा, "यह किसलिए?"

उसने उत्तर दिया, "...में कुछ कैथोलिक पादरी एक स्कूल चला रहे हैं। इस फोटो की बिक्री से जो पैसा मुझे मिलेगा, उसे मैं स्कूल की सहायता के लिए दे दूंगा।"

गांधीजी ने उसका फोटो लौटाते हुए कहा, "यह तो किस्सा ही और है। तुम मुझसे यह आशा न करो कि मैं उन पादरियों की, उनके धर्म-परिवर्तन के विषय में, कोई सहायता करूंगा। तुम्हें मालूम है, वे क्या करते हैं?"

और फिर धर्म-परिवर्तन की घटना सुनाते हुए बोले, तुमको पता है, वहां किस तरह एक हिन्दू मंदिर नष्ट किया गया? अन्तर्राष्ट्रीय धर्मसंघवालों के बीच में पड़ने के कारण मैंने उस सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा। लेकिन वे कुछ नहीं कर सके। उनमें भी अधिकतर ईसाई ही हैं। परन्तु उन्होंने मुझे लिखने की इजाजत दे दी। तो भी इस खयाल से कि लोग कहीं भड़क न उठें, मैंने जान-बूझकर कुछ नहीं लिखा।"

विद्यार्थी ने कहा, "पर जिन ईसाइयों में वे पादरी काम कर रहे हैं, उन्हें ईसाई धर्म ग्रहण किये तो एक जमाना बीत गया है।"

गांधीजी बोले, "ठीक है। पर वे वहां नये-नये उपद्रवों को उत्तेजन देते हैं। मैं नहीं जानता कि एक उदात्त धर्म के माननेवाले एक ही धर्म के दो सम्प्रदायों के बीच घातक झगड़े पैदा करने में क्यों मदद देते हैं!"

विद्यार्थी ने कहा, "पर ईसाई धर्म तो मैंने खुद स्वीकार

कितना आनंद और सान्त्वना मिली है।

गांधीजी बोले, "यह मैं समझ सकता हूं। तुम एक सच्चे ईसाई की भाषा का प्रयोग कर रहे हो। अगर हिन्दुस्तान के हरिजन तुम्हारी बौद्धिक और आध्यात्मिक सतह पर पहुंच जायं और तुम्हारी मौलिक पाप की भावना का अनुभव करने लगें, तो मैं उन्हें स्वेच्छा से ईसाई धर्म ग्रहण करने के लिए आशीर्वाद दे दूंगा। मेरे लड़के को जिस ढंग से इस्लाम ग्रहण कराया गया है उसपर अखबारों में मैंने जो लिखा है, क्या तुमने उसे पढ़ा है? अगर वह शुद्ध और पश्चात्तापभरे हृदय से मुसलमान हुआ होता, तो मेरा उसके साथ कोई झगड़ा नहीं था। पर जिन लोगों ने उसे इस्लाम धर्म स्वीकार करने में मदद दी है और उसके स्वधर्म त्याग पर जो फूले नहीं समा रहे हैं वे उसकी कमजोरियों से अनुचित लाभ ही उठा रहे हैं, इस्लाम के वे सच्चे प्रतिनिधि नहीं हैं। मैंने अपने असंख्य मुस्लिम मित्रों के नाम जो पत्र लिखा है, मैं तुम्हें बताऊं? उसे मैंने अपने हृदय के खून में कलम डुबोकर लिखा है। इसी तरह तिरुचिन गोडू के जिस धर्म-परिवर्तन की घटना के बारे में मैंने तुमसे कहा है उसने ऐसा घाव कर दिया है कि जिसके भरने की कोई सूरत नजर नहीं आती।"

गांधीजी अन्तर की जिस गहरी पीड़ा के साथ बोल रहे थे, उसे वह युवक समझ गया। हस्ताक्षर कराने पर अब उसने जोर नहीं दिया और प्रणाम करके चला गया।

मैं अपनी दाढ़ी कैसे बनवा सकता हूं ?

बात १९३६ की है। गांधीजी सेगांव में जाकर रहने लगे थे। एक दिन एक स्त्री अपनी लड़की के साथ उनके पास आई। उन दोनों की तबीयत कुछ खराब थी और वे गांधीजी से दवा लेने आई थीं। गांधीजी ने उनको अच्छी तरह देखा और उनके रोग की जांच-पड़ताल की। फिर उन्हें दवा दे दी। क्या खाना चाहिए और क्या नहीं, यह उन्हें विस्तार-पूर्वक बताया। फिर उस स्त्री से बोले, "अब यह तो तुम देखती ही हो कि मुझे दाढ़ी भी रखनी पड़ रही है।"

उस स्त्री ने उत्तर दिया, "पर मेरे पति ने आने से इंकार कब किया है। जब भी आप बुलायें, वह आने को तैयार हैं।"

गांधीजी बोले, "सो तो मैं जानता हूं, पर वह हरिजनों के बाल बनायेगा ?"

स्त्री ने उत्तर दिया, "यह मैं नहीं जानती, महाराज। पर आपके बाल वह खुशी से बनाने के लिए तैयार हैं।"

गांधीजी बोले, "लेकिन जब वह मेरे हरिजन भाइयों की हजामत बनाने के लिए तैयार नहीं है, तो फिर मैं उससे अपनी दाढ़ी कैसे बनवा सकता हूं ?"

हां, लेकिन कीमत कम हो जाती है

गांधीजी ने जब दक्षिण भारत में हिन्दी-प्रचार का काम शुरू किया था, उस समय जो प्रचारक वहां गये थे, उनमें से एक थे क्षेमानन्दजी 'राहत' । वह हिन्दी के अच्छे लेखक थे । बाद में वह 'त्यागभूमि' में श्री हरिभाऊ उपाध्याय के साथ काम करने लगे । 'त्यागभूमि' का एक विशेषांक 'प्रताप अंक' के रूप में निकालने का निश्चय किया गया । उसी सम्बन्ध में गांधीजी से सलाह करने के लिए श्री राहतजी उनसे मिलने आगरा पहुंचे । वह उन्हींके पास ठहरे । एक दिन गांधीजी को कहीं जाना था । राहतजी भी साथ जानेवाले थे । गांधीजी चल पड़े, लेकिन राहतजी पीछे रह गये । राहतजी उन दिनों गले में मालवीयजी की तरह दुपट्टा डालते थे । उसीको खोजने में देर हो गई । जब आये, तो गांधीजी ने कहा, "क्यों, पिछड़ क्यों गये ?"

राहतजी ने उत्तर दिया, "दुपट्टा खोज रहा था, इस-लिए देर हो गई ।"

गांधीजी बोले, "दुपट्टे की क्या जरूरत है ? देखो, मेरे पास तो नहीं है ।"

राहतजी ने कहा, "दुपट्टे से शोभा बढ़ जाती है ।"

तुरन्त गांधीजी बोले, "हां, लेकिन कीमत कम हो जाती है ।"

बिना सोचे-समझे किसीके लिए कुछ कहना ठीक नहीं

अजमेर-यात्रा के अवसर पर गांधीजी के एक पुराने मेज-बान ने उन्हें अपने यहां शाम का भोजन करने के लिए निमंत्रित किया। कुछ नवयुवक उन मेजबान महोदय से अप्रसन्न थे। उन्होंने श्री हरिभाऊ उपाध्याय तथा श्री ठक्कर बापा से कहा, "हम बापू को वहां नहीं जाने देंगे। उनकी मोटर के सामने लेट जायंगे।"

हरिभाऊजी इस बात से बहुत चिन्तित हो उठे। आखिर उन्होंने एक रास्ता निकाला। उन युवकों से कहा, "आप सबेरे गांधीजी से मिल लें। अपनी शिकायत उनके सामने रखें। उसके बाद भी गांधीजी जाना उचित समझें तो जाने दें।"

युवक इस बात से सहमत हो गये। लेकिन अचानक रात को हरिभाऊजी की नींद खुल गई। लगभग ढाई बजे का समय था। उन्होंने देखा कि गांधीजी अपने कमरे में बैठे कुछ लिख रहे हैं। हरिभाऊजी को देखते ही वह बोले, "क्या तुम भी जाग रहे थे? कुछ कहना तो नहीं है?"

यह अच्छा अवसर था। हरिभाऊजी ने युवकों के आक्रोश की बात उनके सामने रखी। सुनकर गांधीजी गम्भीर हो गये। बोले, "तुम उनके बारे में कुछ जानते हो? क्या युवकों की

शिकायत सही है ?"

हरिभाऊजी ने कहा, "सुनी तो मैंने भी कुछ ऐसी ही बातें हैं।"

गांधीजी बोले, "अच्छी बात है, कल मैं तुम्हारी भेंट उनसे कराऊंगा।

दूसरे दिन गांधीजी ने, जब वह मेजबान महोदय आये, तो हरिभाऊजी को भी बुला भेजा और कहा, "हरिभाऊ ने मुझसे आपके संबंध में ये-ये बातें कहीं हैं। आपको क्या कहना है ?"

उन्होंने सब बातों से इन्कार कर दिया और अप्रसन्न होकर हरिभाऊजी से बोले, "आपने मुझसे क्यों नहीं पूछा ? बिना पूछे यह सब बापू से कहना कहांतक ठीक था ? सत्याग्रही का क्या यही धर्म है ?"

लज्जित होकर हरिभाऊजी ने उत्तर दिया, "मैंने अपनी तरफ से कोई शिकायत नहीं की। दूसरों की बात ही उनके सामने रखी थी। मेरा उद्देश्य आपके प्रति बुरा नहीं था, फिर भी मैं क्षमा मांगता हूं।"

गांधीजी ने कहा, "अच्छा, आप दोनों इस संबंध में पहले विस्तार से बातें कर लें, फिर मुझसे मिलें।"

दोनों ने बातें करने के पश्चात गांधीजी से फिर भेंट की। गांधीजी ने सारी कहानी सुनी और गम्भीर स्वर में बोले, "जबतक ये शिकायतें सच प्रमाणित नहीं हो जातीं तबतक मुझे इन्हें निर्दोष ही मानना होगा और जबतक इन्हें निर्दोष मानता हूं तबतक इनके यहां जाना मेरा कर्तव्य है। ऐसा न करूं, तो

फिर अपने धर्म से चूकूंगा ।"

इतना ही नहीं, उन्होंने हरिभाऊजी को फिर बुलाया और कहा, "इस तरह बिना सोचे-समझे किसीके लिए कुछ कहना ठीक नहीं है। इससे या तो उस व्यक्ति के प्रति अन्याय होता है या फिर प्रमाण के अभाव में हम सच्चे होते हुए भी झूठे होते हैं। इसके अतिरिक्त ऐसी बातें झूठ-मूठ भी उठा करती हैं। तिल का ताड़ बना लिया जाता है।"

: १६ :

मैं अपने बाल और मूंछें अपनी ही इच्छा से कटवाना चाहता हूं

दक्षिण अफ्रीका की जेलों का यह नियम था कि यदि किसी कैदी को दो महीने की सजा होती थी, तो उसके बाल और उसकी मूंछें काट दी जाती थीं। लेकिन यह नियम भारतीयों के साथ पूरी तरह लागू नहीं किया जाता था। आपत्ति करने पर उनके बाल और मूंछें नहीं काटी जाती थीं। गांधीजी जिस समय सत्याग्रह करने के कारण जेल गये तो उन्हें इस नियम का पता लगा। वह मानते थे कि यह नियम ठीक ही है। जेल में सफाई रखने के लिए कंघा आदि तो मिलते नहीं, यदि बाल न काटे जायं तो फोड़े-फुंसी हो जाने की संभावना रहती है। खाते समय रूमाल भी नहीं मिलता। मूंछें लम्बी हों, तो उनमें खाना लग जाता है। इसलिए भी उन्हें

काट दिया जाय तो अच्छा ही है।

गांधीजी ने दरोगा के सामने अपनी यह मांग रखी। उसने कहा, "गवर्नर की आज्ञा है कि ऐसा न किया जाय।"

गांधीजी बोले, "मैं तो अपनी इच्छा से अपने बाल और मूंछें कटवाना चाहता हूं।"

उन्होंने गवर्नर से प्रार्थना की और दूसरे ही दिन उन्हें आज्ञा मिल गई। लेकिन तबतक उनकी सजा दो महीने से कम रह गई थी। इसलिए दरोगा आना-कानी करने लगा। वास्तव में स्वयं गवर्नर को इस मांग के बारे में कुछ डर था। शायद जेल से बाहर आने के बाद गांधीजी गवर्नर पर यह आरोप लगायें कि उनके बाल और मूछें जबर्दस्ती कटवा दिये गए। लेकिन ऐसी कोई बात नहीं हुई। उन्होंने यह बात लिखकर देने का आश्वासन भी दिया। अन्त में उनकी जीत हुई और बड़े दरोगा ने उन्हें एक बड़ी कैंची दी। गांधीजी के साथी कैदी श्री पी० के० नायडू नाई का काम जानते थे। उन्होंने स्वयं तो अपने बाल काटे ही, उसके बाद से बराबर श्री नायडू के साथ मिलकर वह हमेशा दो घंटे भारतीय कैदियों के बाल काटने में लगा देते थे। ऐसा करने से वह देखने में तो अच्छे लगे ही, उनके स्वास्थ्य में सुधार भी हुआ।

जो सत्य मेरे होठों पर है वही सत्य. . .

श्री जमनादास द्वारकादास के साथ गांधीजी का कई बार सैद्धान्तिक मतभेद हुआ। जिस समय ब्रिटेन के युवराज भारत आये थे, उस समय असहयोग आंदोलन का प्रारम्भ हो चुका था। गांधीजी ने उनका बहिष्कार करने का देश से आग्रह किया था। साथ-ही-साथ उन दिनों विदेशी कपड़ों की होली भी जलाई जाती थी।

जो उनके इस कार्य के विरुद्ध हैं, गांधीजी के शिष्य उनका अपमान करते हैं, ऐसी श्री जमनादास द्वारकादास की धारणा थी। उन्हें इस बात पर क्रोध आता था और उन्होंने इसी क्रोध में गांधीजी को एक बहुत सख्त पत्र भी लिख डाला। यद्यपि बाद में उन्हें अपने इस कृत्य पर पश्चात्ताप हुआ। उस समय उन्होंने लिखा था, "आप मुंह से बार-बार 'सत्य-सत्य' पुकारते हैं, मगर ऐसे कामों को नहीं रोकते। मुझे शंका होती है कि आपके हृदय में सत्य है भी या नहीं।"

दूसरे दिन ही गांधीजी के हाथ का लिखा हुआ पत्र उन्हें मिला। उसमें लिखा था :

"चिरंजीवी जमनादास, तुमने लिखा, अच्छा किया। जिस समय हनुमानजी का हृदय चीरकर देखा गया था, तो जो राम उनके होठों पर था वही राम उनके हृदय के कोने-कोने

में पाया गया। इसी प्रकार जब तुम मेरा हृदय चीरकर देखोगे तो जो सत्य मेरे होठों पर है वही सत्य मेरे कोने-कोने में पाओगे। मगर आज तो मैं तुम्हारी अश्रद्धा का प्रहार सहन करता हूं। और कुछ चारा नहीं है। परन्तु संभवतः मेरे जीवन में ही या मेरे मरने के बाद वह समय अवश्य आयगा जब तुम ही सबसे अधिक मेरी सत्य और अहिंसा की अटूट श्रद्धा के विषय में गवाही दोगे।"

: १८ :

बड़ों की चप्पलों को कभी पैर नहीं लगाते

गांधीजी रोज सुबह घूमने के लिए जाते थे। एक दिन उन्होंने अपनी पौत्री सुमित्रा से कहा, "मेरी चप्पल ले आओ।"

बालक तो चंचल होते ही हैं। सुमित्रा ने गांधीजी की चप्पलें अपने छोटे पैरों में पहनीं और उन्हें घसीटती हुई ले आई।

यह देखकर गांधीजी बोले, "बड़ों की चप्पलों को कभी पैर नहीं लगाते। उनको हाथ में उठाकर लाना ही सही आचरण है।"

इतना ही नहीं, उन्होंने फिर कहा, "जाओ, इन चप्पलों को वापस ले जाओ। जहां से उठाया था वहीं रखो और फिर हाथ में उठाकर मेरे पास लाओ।"

सुमित्रा को ऐसा ही करना पड़ा। इसके बाद ही वह घूमने के लिए गये।

स्त्रियां संयम-नियम के पालन में पुरुषों की अपेक्षा अधिक समर्थ हैं

श्री कन्हैयालाल उपाध्याय अपनी पत्नी के साथ दो वर्ष के लिए साबरमती-आश्रम में आकर रहे थे। उसके पश्चात उन्होंने वहां से जाने का निश्चय किया। गांधीजी चाहते थे कि वह कुछ समय यहां और रहें। उन दिनों वह यरवदा-जेल में थे। एक दिन वहीं पर उन्होंने इन दोनों को बुला भेजा।

जिस समय वे दोनों वहां पहुंचे, गांधीजी जेल के आंगन में लगे एक कलमी आम की सघन छाया में चटाई पर बैठे चर्खा कात रहे थे। आस-पास और भी कई व्यक्ति बैठे थे। कुछ देर इधर-उधर की बातें होती रहीं। फिर गांधीजी बोले, "मैं चाहता था कि तुम कुछ दिन और आश्रम में रहते। ये दो वर्ष तो तुमने विद्यार्थी-जीवन के रूप में व्यतीत किये हैं। अब तुम्हें व्यवस्था-विभाग के कुछ अनुभव लेने चाहिए। आश्रम में रहते हुए तुम्हें सत्य आदि महाव्रतों के पालन का और अवसर मिलेगा। वह चरित्र-गठन में सहायक ही होता है। मगर तुम बार-बार जाने का आग्रह कर रहे हो। ऐसा क्यों है?"

उपाध्यायजी ने उत्तर दिया, "बापूजी, आपका कहना ठीक है, लेकिन अब और अधिक दिनों तक मेरी धर्मपत्नी

ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करने में अपनी असमर्थता जाहिर करने लगी हैं। मैं स्वयं तो दो-चार वर्ष और यहां रहना चाहता हूं। इन्हींके कारण मैंने जाने का फैसला किया है।"

गम्भीर स्वर में गांधीजी बोले, "मुझे तुम्हारा यह उत्तर सही नहीं मालूम होता है। पुरुषों में यह खास बात मैंने पाई है कि वे अपनी कमजोरियों को छिपाने के लिए स्त्रियों को ढाल बना देते हैं।"

इतना कहकर उन्होंने कई उदाहरण दिये और फिर बोले, "स्त्रियां, विशेषकर भारतीय बहनें, संयम-नियम के पालन में पुरुषों की अपेक्षा अधिक समर्थ हैं। यह मेरा खुद का भी अनुभव है। हिन्दू धर्म के इतिहास के पन्ने इनकी उज्ज्वल गाथाओं से भरे पड़े हैं।"

इस प्रकार की अनेक बातें गांधीजी गम्भीर मुद्रा में कहते चले गए। उपाध्यायजी इन बातों को सुनकर लज्जित हो उठे। उनकी कमजोरी पकड़ी गई थी। उनकी पत्नी सामने ही बैठी थीं। इसलिए बहानेबाजी की गुंजाइश नहीं थी। उन्हें अपना अपराध स्वीकार करना पड़ा।

: २० :

बा का अपना पृथक् अस्तित्व है

२ अक्तूबर, १९४१ का दिन था। गांधी-जयन्ती का पवित्र दिन। इस अवसर पर सेवाग्राम और वर्धा की सभी

संस्थाओं के अनेक कार्यकर्ता गांधीजी का अभिनन्दन करने के लिए इकट्ठे हुए थे। महिला-आश्रम, वर्धा की बहनें बापू के लिए दो चादरें और एक साड़ी लाई थीं। सबने मिलकर जो सूत काता था उसीसे ये तैयार की गई थीं। गांधीजी को खादी से बढ़कर और क्या प्रिय हो सकता था! वह बड़े प्रसन्न हुए, लेकिन जैसे ही उनकी दृष्टि साड़ी पर पड़ी, वह जोर से हँस पड़े और बोले, "यह क्या! तुम लोग मुझे क्या साड़ी पहनाओगे?"

एक बहन ने उत्तर दिया. "बापू, यह साड़ी तो बा के लिए है।"

गांधीजी बोले, "बा के लिए है, तो मुझे क्यों दी गई है?"

दूसरी बहन ने उत्तर दिया, "आपके जन्म-दिन पर बा के लिए यह भेंट है, बापू।".

गांधीजी बोले, "अरे, जन्म-दिन मेरा और भेंट बा के लिए!"

फिर बा की ओर देखकर उन्होंने कहा, "देखती हो, ये लड़कियां तुम्हारे लिए क्या लाई हैं?"

कोई कुछ कह पाता कि गांधीजी सहसा गम्भीर हो उठे। बोले, "तुम लोग यह ठीक नहीं कर रही हो। बा को तुम मेरे अन्तर्गत समझती हो। बा का पृथक अस्तित्व है। मेरे जन्म-दिन पर उनको साड़ी देकर तुम उनका सम्मान नहीं कर रहीं। उनको कुछ भेंट देना है, तो उनके जन्म-दिन पर दो। उनका जन्म-दिन कौन-सा है, यह तो मैं भी नहीं जानता। चाहो तो

उनके भाई को पत्र लिखकर पूछ सकती हो। वहां से भी पता न चले तो साल का कोई दिन उनका जन्म-दिन मान लो और उस दिन उनको भेंट करो।"

: २१ :

विघ्न नहीं, इससे भजन में मदद मिलती है

सन् १९२६ में हरिद्वार के कुम्भ के मेले के अवसर पर खादी-प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। इसका उद्घाटन किया था स्वयं गांधीजी ने और इस अवसर पर महामना पंडित मदनमोहन मालवीय भी पधारे थे। दोनों नेताओं के दृष्टि-कोण में अन्तर था, परन्तु दोनों के प्रेम में इतनी ही प्रगाढ़ता थी। उनकी बातें सुनकर श्रोताओं को बहुत आनंद आता था। उस दिन भी ऐसा ही हुआ। गांधीजी ने कहा, "प्रत्येक मनुष्य के लिए हाथ से कुछ-न-कुछ श्रम करना आवश्यक है।"

मालवीयजी ने उत्तर दिया, "मैं ऐसा नहीं मानता। मेरा जीवन भी ऐसा बन गया है कि हाथ से कोई श्रम कर ही नहीं सकता।"

गांधीजी बोले, "आप ऐसा कैसे कहते हैं? आप चर्खा मजे में चला सकते हैं।"

मालवीयजी ने उत्तर दिया, "चर्खा चलाना मुझे नहीं आता।"

गांधीजी बोले, "सो तो मैं एक मिनट में सिखा सकता हूं।"

यह कहते हुए गांधीजी ने चर्खा मालवीयजी की ओर बढ़ा दिया। मालवीयजी ने फिर उत्तर दिया, "नहीं, इससे भजन में विघ्न पड़ता है।"

गांधीजी तुरन्त बोले, "विघ्न नहीं, इससे भजन में मदद मिलती है।"

: २२ :

हरिजनों का प्रश्न स्वराज्य से भी बड़ा है

गांधीजी ने हरिजनों के प्रश्न को लेकर १९३२ में यरवदा-जेल में अपना ऐतिहासिक अनशन किया था और उसकी समाप्ति हुई थी सुप्रसिद्ध पूना पैक्ट में। उस समय अनेक राजनेता गांधीजी से मिलने के लिए आया करते थे और लंबी-लंबी चर्चाएं किया करते थे।

एक दिन एक राजनेता ने बातों-ही-बातों में गांधीजी से कहा, "स्वराज्य-आन्दोलन की तुलना में छुआछूत दूर करने और हरिजनों के उद्धार के लिए आपने जो अनशन किया है, वह मुझे बहुत महत्वपूर्ण नहीं लगता। क्या इसका यह अर्थ तो नहीं है कि इसी बहाने जेल के बाहर आकर, हरिजन-आन्दोलन की आड़ में, आप स्वराज्य की लड़ाई लड़ने के लिए फिर से देश में शक्ति का संचार करना चाहते हैं?"

गांधीजी ने तुरन्त दृढ़ स्वर में उत्तर दिया, "नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। हरिजनों का प्रश्न मेरे लिए मानवता का

प्रश्न है, जो स्वराज्य से भी बड़ा है। मैं हिन्दू धर्म को निष्क-लंक देखना चाहता हूं। हिन्दू धर्म से मेरा मतलब है सत्य और अहिंसा की सुदृढ़ नींव पर खड़ा धर्म, जो समूची मानवता का धर्म है। स्वराज्य तो आयेगा ही। आज नहीं कल आयगा, पर हमारे धर्म पर छूतछात का कलंक लगा हुआ हो, तो मेरे लिए इस स्वराज्य की कोई कीमत नहीं। आपके लिए यह छोटी चीज हो सकती है, पर मेरे लिए तो बड़ी-से-बड़ी चीज है। मैं इसके भीतर समूची मानवता का उद्धार देख रहा हूं।"

वह राजनेता इस बात का क्या जवाब दे सकते थे! निरुत्तर हो गये।

: २३ :

यह ठीक नहीं कि नागरिकों को सताया जाय

फरवरी, १९१६ में हिन्दू विश्वविद्यालय के शिलान्यास के अवसर पर गांधीजी भी काशी आये थे। दक्षिण अफ्रीका से लौटकर उन्होंने श्री गोपालकृष्ण गोखले की सलाह के अनुसार एक वर्ष तक देश की स्थिति का अध्ययन किया। इस बीच उन्होंने कोई भाषण भी नहीं दिया। लेकिन अब एक वर्ष समाप्त हो चुका था। शिलान्यास के दूसरे दिन हिन्दू कालेज में उनका भाषण हुआ। उन दिनों क्रांतिकारियों का आतंक कुछ अधिक छाया हुआ था। स्वयं काशी में कुछ नव-

युवकों पर मुकदमे चल रहे थे। वायसराय के आगमन के कारण नगर में पुलिस का ऐसा कड़ा प्रबन्ध किया गया था, मानों शत्रुओं ने घेरा डाल दिया हो। नगरवासियों का चलना-फिरना दूभर हो गया था।

गांधीजी जब बोलने के लिए खड़े हुए तो मंच पर अनेक राजे-महाराजे और युवराज बैठे हुए थे। दरभंगा के महाराज सभापति थे। गांधीजी ने पहले तो काशी की गलियों की भीषण गन्दगी की चर्चा की, फिर सहसा बोल उठे, "क्या बात है कि अंग्रेज अपने देश में इतने सज्जन होते हैं, इतनी शिष्टता का व्यवहार करते हैं, परन्तु हमारे सम्पर्क में आकर वे इतने खराब हो जाते हैं? इसमें दोष हमारा ही होगा। आश्चर्य की बात है, हम उनका अत्याचार और अनाचार सहते रहते हैं। वायसराय के आगमन के समय इस नगरी में ऐसा प्रतीत हुआ, मानो किसी शत्रु का आक्रमण हुआ हो। सब नागरिक भय-भीत होकर भागे फिरते रहे। अच्छा होता कि वायसराय गोली से मारे जाते, पर यह ठीक नहीं है कि नागरिकों को इस तरह सताया जाय।"

ऐसी खरी और स्पष्ट बातें सुनकर दर्शकों में खलबली मच गई। सरकारी अधिकारी उठकर जाने लगे। राजा लोग घबराने लगे। सभापति ने गांधीजी को रोकना चाहा। गांधी-जी ने कहा, "मैं सभापति की आज्ञा मान सकता हूं।"

सभापति बोले, "अच्छा, आप बोलिए।"

गांधीजी ने फिर नगर के कष्टों का वर्णन करना आरम्भ किया और अधिकारियों की भर्त्सना करने लगे। सब राजा

लोग उठकर चल दिये । सभापति ने भी आसन छोड़ दिया । चारों ओर कोलाहल मच उठा । सभा समाप्त हो गई । गांधीजी मंच से उतर आये, लेकिन वह समझ नहीं पा रहे थे कि यह क्या हुआ ! वह बोले, "मैंने क्या कहा ? मैंने तो कोई अनुचित बात नहीं कही । इतनी गड़बड़ी क्यों मची ?"

सभा निश्चय ही भंग हो गई, लेकिन उस दिन देश ने गांधीजी को सचमुच एक निर्भीक और सच्चे पुरुष के रूप में पाया ।

: २४ :

डायरी में 'वगैरा' शब्द के लिए कोई स्थान नहीं

गांधीजी ने मनु को डायरी रखने के लिए इस प्रकार की हिदायतें दी थीं कि उनसे एक-एक मिनट का सावधानीपूर्वक सदुपयोग किया जा सके ।

मनुबहन ने पूरे दिन की डायरी लिखी, लेकिन एक जगह लिख दिया, "सफाई वगैरा की ।"

गांधीजी प्रतिदिन डायरी पढ़कर उसपर अपने हस्ताक्षर करते थे । आज की डायरी पर हस्ताक्षर करते हुए गांधीजी ने लिखा, "कातने का हिसाब लिखा जाय । मन में आये हुए विचार लिखे जायं । जो-जो पढ़ा हो, उसकी टिप्पणी लिखी जाय । 'वगैरा' का उपयोग नहीं होना चाहिए । डायरी में 'वगैरा' शब्द के लिए कोई स्थान नहीं है ।

"जिसमें जो पढ़ा हो, वह लिखा जाय। ऐसा करने से पढ़ा हुआ कितना पच गया है, यह मालूम हो जायगा। जो बातें हुई हों, वे लिखी जायं।"

: २५ :

मैं पहले 'मैन आफ लैटर्स से मिलूंगा

गांधीजी गोलमेज-परिषद में भाग लेने के लिए लन्दन गये थे। एक दिन ब्रिटेन के तत्कालीन प्रधान मंत्री श्री रैम्जे मेक्डॉनल्ड गांधीजी से कोई आवश्यक सलाह-मशविरा करने के लिए मिलने आये। उसी समय एक डाकिया भी वहां आया। वह बहुत दूर से पैदल चलकर भारत के उस महान नेता को प्रणाम करने के लिए वहां आया था। उस समय 'डेज विद बर्नार्ड शा' नामक पुस्तक के सुप्रसिद्ध लेखक श्री एस० विन्स्टन गांधीजी के पास थे। प्रश्न उठा, पहले किससे भेंट की जाय?

गांधीजी ने दृढ़ स्वर में कहा, "मैं पहले 'मैन आफ लैटर्स' से मिलूंगा।"

'मैन आफ लैटर्स' श्लेष है। इस वाक्य का शुद्ध अर्थ है विद्वान पुरुष, लेकिन गांधीजी ने यहां इसका प्रयोग 'डाकिये' के लिए किया है। डाकिये के पास भी तो 'लेटर्स' यानी पत्र रहते हैं।

अपने इस निश्चय के बारे में मि० विन्स्टन को समझाते हुए गांधीजी बोले, "राजनीतिज्ञ प्रतीक्षा कर सकता है, क्योंकि

यह उसका काम है। वह हमेशा तबतक प्रतीक्षा करता रहता है जबतक परिस्थिति उसे चलने को विवश नहीं कर देती।"

: २६ :

हां, यह भी सच है

अगाखां महल में श्रीमती कस्तूरबा की मृत्यु के बाद गांधीजी मलेरिया के शिकार हो गये थे। एक दिन वह डा० सुशीला नैयर से बोले, "अच्छा हुआ, बा के रहते मुझे बुखार न आया। ऐसा होता तो वह तुम सबको मेरी सेवा करने भेज देती, स्वयं जैसी-तैसी सेवा से काम चला लेती।"

सुशीलाबहन ने उत्तर दिया, "बापूजी, वह होतीं तो इससे भी आगे बढ़ गई होतीं। वह स्वयं ही आपकी सेवा में लग जातीं।"

गांधीजी गद्‌गद्‌ होकर बोले, "बा का काम तो ऐसा ही है।"

तुरन्त ही जैसे उन्हें याद आया, "बा तो अब नहीं है। उनके लिए मैंने 'ऐसा है' कैसे कह दिया!" बोले, "मुझे 'ऐसा था' कहना चाहिए था।"

सुशीलाबहन ने उत्तर दिया, "आपके लिए तो बा आज भी जीवित हैं, चली थोड़े ही गई हैं।"

गांधीजी ने कहा, "हां, यह भी सच है।"

और यह सच ही था। अन्तिम समय में बा जिस मेज पर सिर रखकर सो जाती थीं, उसे बा के स्वर्गवास के बाद

बापू ने अपने पास रख लिया था। वह कहते थे, "मेरे लिए यह मेज बड़ी कीमती हो गई है। इसपर सिर रखकर बैठी हुई बा का चित्र हमेशा मेरी आंखों के सामने बना रहता है।"

: २७ :

उसे मार कर अपनी पशुता का दर्शन कराया था

दक्षिण अफ्रीका के टालस्टाय-आश्रम में एक ऐसा युवक था, जो बहुत ही ऊधम मचाता था। झूठ बोलता था। किसी की सुनता नहीं था और सबसे लड़ता था। एक दिन उसने इतना उपद्रव मचाया था कि गांधीजी चिन्तित हो उठे। वह किसीको सजा नहीं देते थे, पर उस दिन उन्हें बहुत ही क्रोध हो आया। वह उस युवक के पास गये, उसे समझाने का प्रयत्न किया, परन्तु वह तो उनकी आंखों में धूल झोंकने के लिए तैयार हो गया।

अब तो गांधीजी अपनेको न रोक सके। पास में रूल पड़ा हुआ था। उसे उठाकर उन्होंने युवक के हाथ पर दे मारा। मारते समय उनका शरीर कांप रहा था। विद्यार्थी ने शायद यह आशा नहीं की थी। वह कल्पना भी नहीं कर सकता था कि गांधीजी मार सकते हैं। वह रो पड़ा और क्षमा मांगी।

उसके रोने का कारण यह नहीं था कि उसपर मार पड़ी थी। उसमें इतनी शक्ति थी कि वह गांधीजी का मुकाबला कर

सके। सत्रह साल का वह युवक शरीर से अत्यन्त स्वस्थ था। फिर उसके रोने का क्या कारण था? गांधीजी ने अपने उस अनुभव का स्वयं इस प्रकार वर्णन किया, "मेरे उसे रूल मारने में मुझे जो पीड़ा हुई, उसीका उसने अनुभव किया। उस घटना के बाद उसने कभी मेरा विरोध नहीं किया, परन्तु इस प्रकार रूल मारने का पश्चात्ताप मुझे आजतक होता रहता है। मुझे भय है कि मैंने उसे मारकर अपनी आत्मा का नहीं, बल्कि अपनी पशुता का दर्शन कराया था।"

: २८ :

एक इच्छा का त्याग किया, परन्तु. . .

आपरेशन के बाद गांधीजी एक बन्दी के रूप में अस्पताल में आराम कर रहे थे। बहुत-से व्यक्ति उनसे मिलने के लिए आते थे। दीनबन्धु एन्ड्रयूज भी मिलने के लिए आये। उस दिन सुबह के साढ़े सात बजे थे। वह घर से चाय पिये बिना गांधीजी के पास आकर बैठ गये। बोले, "देखिये, मैं कितना संयम पालन कर रहा हूं। आज चाय पिये बिना आया हूं।"

गांधीजी ने पूछा, "किसलिए?"

एन्ड्रयूज ने उत्तर दिया, "आपके पास दो घड़ी बैठने के लिए।"

गांधीजी मुस्कराए। बोले, "हूं, मतलब यह कि एक

इच्छा का त्याग किया, परन्तु दूसरी इच्छा के कारण ही।"

एन्ड्रयूज खिलखिलाकर हँस पड़े।

: २६ :

मुझे तो अपनी परीक्षा करनी है

बिहार-प्रवास में मनु प्रायः अस्वस्थ रहती थी। उस दिन उसे बहुत तेज़ बुखार था। तीन-चार डाक्टर देखने के लिए आये। उन्होंने तुरन्त आपरेशन कराने की सलाह दी। अपेंडिसाइटिस बताया।

गांधीजी बड़े स्नेह से मनु को समझाते हुए बोले, "जयसुखलाल को तार देकर बुला दूं?"

मनु ने उत्तर दिया, "आपकी गोद में मौत आ जाय, तो इससे अधिक कोई लालसा नहीं। आप मेरी इतनी अधिक सम्भाल रखते हैं और भाई (पिताजी) यहां आकर क्या करेंगे? ज्यादा चिन्ता में पड़ेंगे। आपको जैसा ठीक लगे, वैसा कीजिये।"

आपरेशन की तैयारी आरम्भ हो गई। गांधीजी प्रार्थना करके जल्दी लौट आये। मनु ने तबतक उसकी अनुपस्थिति में गांधीजी के लिए कब क्या करना होगा, कौन चीज कहां रखी है, यह सब मृदुलाबहन और बिसेनभाई को समझा दिया। गांधीजी फिर मनु के पास आकर बैठ गये। बोले, "ज़रा भी न घबराना, मैं सामने खड़ा रहूंगा।"

मनु ने उत्तर दिया, "आपको इतनी थकान है और मृदुला-बहन तो आती ही हैं। आपके कारण मेरी सुश्रूषा अच्छी ही होगी। आपरेशन कराने की मुझमें काफी हिम्मत है।"

गांधीजी बोले, "मुझे तो अपनी परीक्षा करनी है, इसलिए आपरेशन के समय मौजूद रहना है, क्योंकि प्राकृतिक चिकित्सकों ने तो साफ कहा है कि तुम्हें अपेंडिक्स की बीमारी नहीं है। इसलिए यदि रोग एक प्रकार का हो और इलाज दूसरी प्रकार का हो, तो रोगी का क्या हाल होगा? यदि प्राकृतिक चिकित्सकों की भूल होगी, तो मुझे उन्हें बताना पड़ेगा कि शरीर-विज्ञान उन्हें पूरी तरह जानना चाहिए।"

क्लोरोफार्म देने से पहले गांधीजी ने मनु के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "मन में रामनाम जपते रहना, कुछ भी पता नहीं चलेगा।"

मनु ने जोर से गांधीजी का हाथ पकड़ लिया। वह पास ही कुर्सी डालकर और मुंह पर पट्टी बांधकर बैठ गये। उन्होंने सारा आपरेशन देखा। रात को ग्यारह बजे के बाद ही वह लौटे। मनु को तबतक होश नहीं आया था। डाक्टरों ने उनसे कहा, "इसे जल्दी होश नहीं आयगा, आप चले जायं।"

तभी वह अनिच्छा से गये। उन्होंने मनु के लिए विशेष कमरे के लिए भी मना कर दिया था। कहा, "मेरी लड़की तो गरीब की लड़की है। गरीब की जैसी सार-सम्भाल होती है, वैसी ही इसकी होनी चाहिए।"

लेकिन डाक्टरों ने गांधीजी की यह बात स्वीकार नहीं की। बहुत लोगों के मनु के देखने के लिए आने की संभावना

थी, इस कारण उसे अलग कमरे में ही रखा।

गांधीजी रोज मनु को देखने आते थे। गांव में देर भी हो जाती, तब भी वह आने से न चूकते। एक दिन रात को दस बजे आये। मनु गहरी नींद में सोयी हुई थी, परन्तु गांधी-जी की थपकी सिर पर पड़ते ही एकदम जाग उठी और खुश हो गई। बोली, "बापूजी, आप इतनी देर से क्यों आये?"

गांधीजी बोले, "आना ही चाहिए न। तुम यह समझती होगी कि तुम्हें मेरी सेवा नहीं करनी। परन्तु मुझे तो तुम्हें जल्दी ही अच्छा करके तुमसे सेवा लेनी ही है और अस्पताल का नियम तो तोड़ा ही नहीं जा सकता। परन्तु डाक्टर साहब ने कृपा करके इजाजत दी, इसलिए आ सका।"

और जब वह लौट आई तो उसका पलंग अपनी बैठक के सामने ही लगवाया। मनु ने आपत्ति की, तो बोले, "तुम्हारा पलंग मेरे सामने हो तो मैं सब तरह से निश्चिन्त रह सकूंगा, नहीं तो तुम काम-काज करने लगोगी। सबके सामने सोना अच्छा न लगे तो बीमार न पड़ने की भी तो शर्त होनी चाहिए न! अपनी बीमारी के लिए तुम कम अपराधी नहीं हो।"

: ३० :

रामनाम सबसे बड़ी दवा है

अपनी नोआखाली-यात्रा में गांधीजी जब जगतपुर पहुंचे, तो वहां का वातावरण बहुत ही करुण हो उठा था। संध्या

के समय बहुत-सी बहनें उनसे मिलने के लिए आईं। उनमें से बहुतों को जबरन मुसलमान बनाया गया था। इसी कारण वे बहुत दुखी थीं—इतनी दुखी, मानो उनके पति और पुत्र की हत्या हो गई हो! गांधीजी को अपनी कहानी सुनाते समय उनकी हिचकियां बंध गईं। वातावरण करुणा से ओतप्रोत हो उठा। औरों को भी दिल पर काबू रखना कठिन हो गया। लेकिन गांधीजी ने अपने सहज गम्भीर स्वर में कहा, "मैं तुम्हारी तरह हिचकियां भरकर नहीं रोता। तुममें और मुझमें यही तो अन्तर है। मेरा हृदय भी रो रहा है। तुम्हारा दुःख मेरा दुःख है। इसीलिए तो मैं यहां आया हूं। रामनाम के सिवाय आश्वासन प्राप्त करने की और कोई दवा नहीं है। यही सबसे बड़ी दवा है। कितना ही रोयें, लेकिन गई हुई चीज तो वापस नहीं आयगी। इस बात को यदि हम समझ लें तो फिर दुःख का कोई कारण नहीं रह जाता।"

आरम्भ में वातावरण जितना करुण था, गांधीजी के बोलते-न-बोलते वह उतना ही गम्भीर हो उठा।

: ३१ :

बात को मन में रखना भी चोरी है

लगातार पच्चीस महीने जेल में रहने के कारण बलवन्त-सिंह के दांत खराब हो गये थे। डाक्टर ने उन्हें गन्ना, हरी भाजी और दूध लेने की सलाह दी। दूध और भाजी तो भोजन

में मिलते ही थे, गन्ना गांधीजी के लिए आता था और एक बहन के हाथ में रहता था ।

बलवन्तसिंह ने उनसे इस सम्बन्ध में बात की, तो उन बहन ने चार-पांच रोज का बचा और सूखा गन्ना उन्हें दे दिया । उसमें न रस था, न उसे चूसना ही आसान था । बलवन्तसिंह को बुरा लगा और उसे वहीं छोड़कर चले आये । उन्होंने ऐसा अनुभव किया कि ऐसी जगह रहना क्या ठीक है ? क्या यहां से भाग जाना उचित न होगा ? गांधीजी से ऐसी बातें कैसे कही जा सकती हैं ?

कई दिन तक यह संघर्ष चलता रहा । अन्त में उन्होंने इस घटना की रिपोर्ट गांधीजी को दे दी । गम्भीर होकर गांधीजी बोले, "मुझे बता दिया, यह अच्छा किया । उन बहन को तुमसे द्वेष था, ऐसी बात नहीं । लेकिन उसका अज्ञान जरूर था । जिस सूखे गन्ने का रस मेरे लिए नहीं निकाला जा सकता, वह तुम्हें कैसे दिया जा सकता है ? चूसने के लिए तो ताजा गन्ना ही उत्तम है । सूखा गन्ना चूसने में दांतों को कष्ट होता है । इसमें सत्य और अहिंसा दोनों का सूक्ष्म भंग होता है । सत्य और अहिंसा की डोरी बहुत बारीक है । अगर मेरे साथ रहनेवाले इसको न समझ सकें, तो दूसरा कौन समझ सकेगा ? अगर गन्ना सूखता है, तो अधिक लेना ही क्यों चाहिए ? लिया है तो सूखने पर उसका रस मुझे ही देना चाहिए । अब इसमें दुःख मानने की बात नहीं है । सबक सीखने की बात है । दूसरों के दोषों के प्रति उदारता और अपने दोषों के प्रति कठोरता रखनी चाहिए । अगर हम दूसरों के दोषों को देखते रहें और

मन-ही-मन कुढ़ते रहें, तो शान्ति कैसे मिल सकती है ? अब तुम उसको कह दो कि मुझे तो ताज़ा ही गन्ना चाहिए। अगर गुस्सा करके गन्ना छोड़ोगे, तो शरीर को बिगाड़ोगे। शरीर तो भगवान की दी हुई अमानत है। जो उसकी उपेक्षा करता है, वह भगवान का द्रोह करता है। हां, स्वाद के वश होकर हम कुछ भी न खायं। स्वाद के वश होकर कुछ भी खाना चोरी और सत्य का भंग है। इसकी पहचान भी संयम और तप से ही ध्यान में आती है।"

गांधीजी का प्रवचन रुकने का नाम नहीं ले रहा था। इसलिए बीच में ही टोककर बलवन्तसिंह ने कहा, "बापूजी, ठीक है, अब मैं सब कर लूंगा। मुझे जो दुःख पहुंचा था वह अब नहीं रहा। अगर आपसे न कहता, तो शायद चुपचाप यहां से भाग ही जाता और आपके सत्संग का लाभ खो देता।"

गांधीजी बोले, "मुझसे कह दिया, यह तुम्हारी सरलता है। इसीसे तुम्हारी रक्षा हो जाती है। बात को मन में रखना भी तो चोरी ही है न। अब जाओ और उस बहन के प्रति मन में जो रोष आया था, उसे निकाल दो और आनन्द से अपना काम करो और गन्ना खाना कभी न भूलना।"

मेरी अहिंसा तो मर मिटने का संदेश देती है

संभवत: सन् १९२३ के आसपास की बात है। गुजरात के किसी स्थान पर बड़े जोर का साम्प्रदायिक दंगा हुआ था। वहां के कुछ हिन्दू भागकर गांधीजी से मिलने के लिए साबरमती आये और बड़े दर्दभरे शब्दों में दूसरे सम्प्रदाय के लोगों के अत्याचारों की शिकायत करने लगे। गांधीजी बड़ी शान्ति से उनकी बात सुनते रहे। फिर बोले, "तुम लोगों ने इसका विरोध करने के लिए क्या किया ?"

उन लोगों ने उत्तर दिया, "साहब, क्या करते ! आपकी अहिंसा ने हमारे हाथ-पांव बांध रखे हैं। इसी कारण हमारी पिटाई होती है।"

सहसा गांधीजी का चेहरा तमतमा आया। कठोर स्वर में वह बोले, "सो तो ठीक है, पर मेरी अहिंसा ने यह तो नहीं कहा था कि तुम लोग वहां से भागकर अपनी कायरता की रिपोर्ट मुझे देने आते। मेरी अहिंसा तो ऐसे समय पर मर मिटने का संदेश देती है। तुम लोगों में यदि मर मिटने का साहस नहीं था, तो अपने मत के अनुसार उस स्थिति का मुकाबला करना चाहिए था। तुमने मेरे मत को समझा नहीं और अपने मत पर चलने की तुममें हिम्मत नहीं, तब मुझे अपना मुंह दिखाने की क्या आवश्यकता थी ?"

सबको प्रणाम करना चाहिए था

आगाखां-महल से छूटने के बाद गांधीजी बंगाल और असम के दौरे पर गये थे। रामकृष्ण बजाज तभी जेल से छूटे थे। सन् १९४० में जब वह जेल गये तो गांधीजी ने उनसे कहा था कि कम-से-कम पांच वर्ष तक जेल में रहना पड़ेगा। उस अवधि में अभी कुछ महीने बाकी थे। रामकृष्ण ने उनसे कहा, "इतने समय में आप जो काम चाहें मुझसे ले सकते हैं।"

गांधीजी ने उन्हें अपने साथ दौरे पर चलने के लिए कहा। साथ में और भी बहुत-से लोग थे। इसी बीच वे लोग खादी प्रतिष्ठान, सोदपुर पहुंचे। खानसाहब अब्दुल गफ्फार खां इस समय उनके साथ थे। एक दिन गांधीजी कात रहे थे। खानसाहब पास ही बैठे थे कि रामकृष्ण के कुछ कुटुम्बी और दोस्त, जो कलकत्ता में रहते थे, गांधीजी के दर्शन करने के लिए आये। रामकृष्ण उन्हें गांधीजी के पास ले गये। सभीने झुक-कर गांधीजी को प्रणाम किया। कुछ देर बाद वे लोग चले गये। तब गांधीजी ने रामकृष्ण को बुलाया और उसे समझाते हुए बोले, "जब मेरे मित्र मेरे पास बैठे हों, तब केवल मुझे प्रणाम करना उचित नहीं है, सबको प्रणाम करना चाहिए था। आगे से इस बात का ध्यान रखना। खानसाहब या और कोई भी बुजुर्ग बैठे हों, तो उनके प्रति किसी तरह भी अनादर

व्यक्त नहीं होना चाहिए।"

ऐसी व्यापक और गहरी दृष्टि थी गांधीजी की।

: ३४ :

सत्य ही परमेश्वर है

इंग्लैंड से भारत लौटते समय गांधीजी स्विट्जरलैंड भी रुके थे। उन्हें रोम्या रोलां से मिलना था। उन्हींके पास वह ठहरे भी थे। वहींपर एक दिन उनकी भेंट सुप्रसिद्ध युद्ध-विरोधी नेता पीयर सेरेसोल से हुई। बहुत सबेरे वे दोनों नेता घूमने के लिए निकले। गांधीजी ने कहा, "मि० सेरेसोल, मुझे अपनी प्रवृत्तियों के बारे में विस्तार से बताइये। मैंने उनके बारे में बहुत-कुछ सुना है।"

अपनी आपबीती की चर्चा करते हुए सेरेसोल ने बताया कि किस प्रकार गत महायुद्ध में एक शिक्षक ने सैनिक रूप में काम करने से इन्कार कर दिया था और सरकार ने उसके साथ कैसा व्यवहार किया था। पीयर ने वही मार्ग अपनाया। वह बोले, "मेरे बहुत से अनुयायी हैं। आज भी लोग सेना की नौकरी से इन्कार करते हैं। जेल जाते हैं। लेकिन सेवा तो उन्हें भी करनी है। हां, उनका रास्ता दूसरा है। वे नागरिकों के नाते सेवा करते हैं।"

उसके बाद सेरेसोल ने अपनी अन्तर्राष्ट्रीय सेवा सेना का जिक्र किया। वह स्वेच्छा से सैनिक अनुशासन से भी कठिन

अनुशासन का पालन करके प्रतिवर्ष महीनों तक सेवा करते हैं।

वह कुछ विस्तार से चर्चा कर रहे थे कि गांधीजी बोल उठे, "जरूरी सैनिक नौकरी के लिए जब सरकार बुलाये तभी वर्ष में एक ही बार आपको महायुद्ध का विरोध क्यों करना चाहिए? आप लोगों की जिन्दगी का एक-एक दिन युद्ध से भरा हुआ है। आप लोग जबतक राज्य से सुख-सहूलियत की मांग करते रहेंगे, तबतक वे लोग आपको रोकेंगे ही।"

इसके बाद गांधीजी ने उन्हें बताया कि किस तरह उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य की युद्ध के दिनों में मदद की। सरकार ने उन्हें जो काम बताया, उन्होंने वही किया। वह बोले, "तो भी युद्ध के अन्त में मैं अपने देश की स्वतंत्रता हासिल नहीं कर सका। उसके बाद मैंने साम्राज्य से सहयोग नहीं किया।"

पियर सेरेसोल ने उत्तर दिया, "गांधीजी, जब सरकार विदेशी हो तो मैं ये बातें समझ सकता हूं। पर जहां सरकार अपनी हो और हम लोग यह भी जानते हों कि भले ही सरकार खराब क्यों न हो, वह है तो अपने देश-वासियों के सैकड़ों वर्षों के बलिदान और धैर्यपूर्वक किये गए अनेक प्रयत्नों का फल, और पीढ़ी-दर-पीढ़ी ज्यों-ज्यों नया प्रकाश फैलता गया, त्यों-त्यों सरकार भी विकसित होती गई। ऐसी स्थिति में बात दूसरी ही हो जाती है न!"

इस प्रश्न का विस्तार से उत्तर देते हुए गांधीजी बोले, "मैं तो तुम्हें राजतंत्र से बिलकुल अलग देखना चाहता हूं। चाहता हूं कि मिस म्यूरियल लेस्टर की तरह गरीब स्त्री-पुरुषों का एक ऐसा आंदोलन खड़ा करें कि वे लोग सरकार की

तरफ से मिलनेवाले पैसों को लेने से साफ इन्कार कर दें। वे स्वेच्छा से काम करें, परन्तु मुफ़्त पैसा न लें। ऐसा भोगा हुआ कष्ट कभी निष्फल नहीं जाता और उनकी अहिंसा का जबर्दस्त प्रभाव पड़ता है। सीधे-सादे गरीब लोग जब किसी सत्कार्य के लिए कष्ट सहन करते हैं, तो उसका यही अर्थ होता है कि वे आत्मशुद्धि कर रहे हैं। आखिर में उन्हें विजय मिलकर ही रहती है।"

पोयर बहुत ही गम्भीर स्वर में बोले, "यूरोप के लोग हिन्दुस्तान के लोगों से भिन्न होते हैं। मुझे डर है कि वे ऐसे कामों के लिए शायद ही तैयार हों।"

गांधीजी ने बहुत ही धीमे-से सौम्य स्वर में कहा, "क्या आपको विश्वास है कि लोग तैयार नहीं हैं ?"

सहसा वहां शांति छा गई। गांधीजी ने जो चुनौती दी थी, उसे स्वीकार करते हुए सेरेसोल बोले, "आपके कहने का आशय मैं समझ गया। हम लोग स्वयं ही निकम्मे हैं। हम लोगों में नेताओं की कमी है।"

गांधीजी ने पूर्वतः उत्तर दिया, "यह तो मुझे मानना ही पड़ेगा कि यूरोप में मुझे वास्तविक नेता नजर नहीं आये, अर्थात आधुनिक वातावरण के अनुसार।"

सेरेसोल ने पूछा, "आपकी दृष्टि में इस युग के नेताओं में कौन-कौन-से गुण होने चाहिए ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "चौबीसों घंटे परमात्मा का साक्षात्कार।"

सेरेसोल ने पूछा, "ईश्वर से आप क्या समझते हैं ?"

गांधीजी बोले, "सत्य ही परमेश्वर है और अहिंसा उसकी प्राप्ति का साधन है ।"

: ३५ :

मैं तुम्हें अपंग नहीं बनाना चाहता

दिसम्बर, १९३२ की पहली तारीख को पांच हरिजन विद्यार्थी यरवदा-जेल में गांधीजी से मिलने आये । वे बड़े चतुर थे । उन्होंने गांधीजी से अनेक प्रश्न पूछे । जानना चाहा कि विद्यार्थियों के लिए छात्रवृत्तियों का और ऐसी ही दूसरी सुविधाओं का क्या हुआ ?

गांधीजी ने उत्तर दिया, "इन सब मांगों पर 'अस्पृश्यता-निवारण-मंडल' विचार कर रहा है ।"

विद्यार्थियों ने पूछा, "अस्पृश्यों के लिए अलग छात्रालय क्यों नहीं खुल सकते ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "अलग छात्रालय किसलिए ? अभी जो छात्रालय हैं, वे तुम्हारे लिए खुल जायं, क्या यह बात तुम्हें पसंद नहीं है । अलग छात्रालय खुलने का मतलब होगा कि तुम्हें अछूत समझा जाय ।"

विद्यार्थियों ने कहा, "सवर्ण विद्यार्थी बहुत पैसा खर्च करते हैं । इतना हम कहां से लावें ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "तब तो तुम्हें ऐसे विद्यार्थियों को खोजना चाहिए; जो कम खर्च करते हों ।"

विद्यार्थी बोले, "आप हमारी फ़ीस माफ क्यों नहीं करा देते ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "इसलिए कि मैं तुम्हें अपंग नहीं बनाना चाहता। मैं तुम्हें एक छात्रालय दे दूंगा। तुम अपनी मेहनत से कम खर्च में उसका प्रबन्ध करो। अमरीका के विद्यार्थियों की तरह स्वावलम्बी बनो। अपना काम करते रहो और ट्यूशन या और कोई काम करके खर्च निकालते रहो। तुम दान लो और कोई आदमी तुम्हें दया-भाव से, आश्रय-दाता बनकर दान दे, यह मैं नहीं चाहता। इससे तुम्हारा अधःपतन होगा।"

: ३६ :

मैं उसे पैसे दूं

मद्रास-प्रवास में बा गांधीजी के साथ नटेसन के घर ठहरी हुई थीं। एक दिन नटेसन ने देखा कि उनका चेहरा बहुत उदास है। उन्होंने गांधीजी से कहा, "क्या बात है ? आज श्रीमती गांधी कुछ उदास दिखाई देती हैं।"

बिना झिझके गांधीजी ने उत्तर दिया, "वह चाहती हैं कि अपनी पोतियों के लिए कीमती वस्त्र खरीदने के वास्ते मैं उन्हें पैसे दूं।"

नटेसन ने विनोद में कहा, "और आप नहीं देते। तब तो आप बड़े निर्दयी हैं।"

गांधीजी तुरन्त बोले, "देखो, यह आपकी ज्यादती है। अगर मैं उनकी इच्छाओं को इस प्रकार पूरी करूंगा, तो यह सिद्धांतों से पीछे हटने की बात होगी। वह अच्छी तरह जानती हैं कि मेरे विचार क्या हैं। मैंने उनसे कई बार कहा है कि वह मुझे छोड़कर चली जायं और खुशी से अपने बच्चों के साथ रहें, लेकिन वह ऐसा नहीं करेंगी। पतिव्रता हिन्दू स्त्री की तरह वह मेरे पीछे चलने का हठ करती हैं।"

: ३७ :

साथ खाने का, छुआछूत दूर करने से, सम्बन्ध नहीं

सेगांव का नाई हरिजन लड़के गोविन्द की हजामत इसलिए भी नहीं बनाता था कि ऐसा करने पर सबसे पहले गांव के बुड्ढे पटेल उसका बहिष्कार कर देंगे; पर पटेल दादा ने तो कुछ और ही कर दिखाया। एक दिन सांझ को वह गांधीजी के पास पहुंचे और लगे कहने, "महाराज, मैं तो साफ कहता हूं कि अगर नाई आपके गोविन्द की भी हजामत बना दे तो मुझे उससे कोई परहेज न होगा। मैं तो यहांतक तैयार हूं कि इधर वह आपके गोविन्द की हजामत बनाकर उठे और उधर मेरी बना दे।"

गांधीजी ने पूछा, "तो भाई, फिर कठिनाई क्या है ?"

पटेल ने उत्तर दिया, "कठिनाई यह है महाराज, कि वह

एक बार मुझसे अपने घर खाने के लिए कहता है। भगवान जानता है, मेरे बाल पक गये, पर आजतक मैंने होटल का पानी तक नहीं पिया। फिर वह यह उम्मीद कैसे रखता है कि मैं उसके साथ खाऊंगा ! जब आप गांव में आये, तो सबसे पहले मैंने ग्रापसे कहा था, जिसके जी में जो ग्राये, कहे। छुग्राछूत के बारे में मैं ग्रापके विचारों को नहीं ग्रपना सकूंगा। पर ग्राज तो दूसरे लोग झिझक रहे हैं। मैंने ग्रपने दुराग्रह पर इस हद तक काबू कर लिया है कि ग्रछूत की हजामत बनाने पर भी मैं उसे ग्रछूत नहीं मानूंगा।"

गांधीजी हँसे और बोले, "भाई, तुम्हारी बात का मूल्य तो मैं ग्रच्छी तरह समझता हूं, पर वह तुम्हें ग्रपने घर खाना खिलाने का हठ क्यों करता है ?"

पटेल ने कहा, "क्योंकि वह जानता है कि उसकी जातिवाले उसे बिरादरी से बाहर निकाल सकते हैं। इसलिए मुझे ग्रपने घर खिलाकर वह ग्रपनी पक्की दिलजमई कर लेना चाहता है। अच्छा महाराज, ग्राप ही बताइये, क्या यह बात भी ग्रापके ग्रस्पृश्यता-निवारण के काम में शामिल है ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "कभी नहीं। मैं तो इतने से ही संतुष्ट हूं कि ग्रब तुमने छूने का परहेज तो छोड़ दिया है। तुम जानते हो कि मैं गोविन्द से ग्रपना खाना बनवाता हूं, फिर भी एक-दूसरे के साथ खाने का, छुग्राछूत दूर करने के ग्रान्दोलन से, कोई संबंध नहीं। इस बात की ग्राशा मैं तुमसे नहीं, हरिजन सेवकों से करता हूं।"

शिक्षकों को भला, मजबूत, पवित्र और निर्भय बनना चाहिए

एक वार एक वड़े विद्यालय के बाईस शिक्षक गांधीजी से मिलने आये। वार्त्ता का विषय था—"खादी और चर्खा।" बहुत देर तक गांधीजी उन्हें बताते रहे कि चर्खे का प्रचार किस प्रकार करना चाहिए। बोले, "आप स्वयं तकली चलाना सीखें, लड़कों को भी सिखायें। शाला का काम करने से पहले जैसे प्रार्थना की जाती है, वैसे ही आप तकली चलाने का कार्यक्रम भी रख सकते हैं। प्रार्थना करने से सारा दिन मन निर्मल और विनम्र रहता है। तकली के माध्यम से आप विद्यार्थियों के मन में यह पैदा कर सकते हैं कि विद्या गरीब की सेवा के लिए होती है। सिन्ध की एक पाठशाला में पहले परेड होती है, तब और काम शुरू होते हैं। आप परेड की जगह तकली रख सकते हैं।"

एक अध्यापक ने पूछा, "क्या आप कालेज के विद्यार्थियों के लिए भी यही सलाह देते हैं ?"

गांधीजी बोले, "अवश्य देता हूं। कालेज के विद्यार्थी तो क्या, मैं तो प्रत्येक व्यक्ति को आधा घंटा कातने के लिए कहता हूं। यदि मैं वायसराय होऊं, तो यह नियम बना दूं कि आधा घंटे काते विना दफ्तर का काम आरम्भ नहीं किया जा सकता।"

इसपर सभी लोग हँस पड़े। एक अध्यापक ने कहा, "वह दिन कब आयगा जब आप वायसराय बनेंगे ?"

गांधीजी ने कहा, "अरे, देख लेना मैं वायसराय हो गया तो तुम्हीं लोग गाली दोगे, क्योंकि तब मैं अपने बहुत-से विचित्र विचार सबपर लादने का प्रयत्न करूंगा।"

एक अध्यापक ने कहा, "आज भी कौन-सी कम विचित्रता चलती है ! यह बदलकर नई शुरू हो, तो सोने का सूरज उगे।"

तभी सहसा एक दूसरे अध्यापक ने पूछा, "शिक्षक को कैसा होना चाहिए ?"

गांधीजी बोले, "शिक्षकों को भला, मजबूत, पवित्र और निर्भीक बनना चाहिए। बालकों को उन्हें अपना लेना चाहिए। आज तो शिक्षक और बालकों के बीच में कोई संबंध ही नहीं रह गया है।"

इसपर एक और अध्यापक बोले, "ऐसा होना संभव ही नहीं है, क्योंकि वर्ग बहुत बड़े-बड़े होते हैं।"

उन्होंने और भी बहुत-से तर्क उपस्थित किये। सबके उत्तर में गांधीजी ने अपनी वही बात दोहराई, "ये चार गुण पैदा कर लो, तो सबकुछ हो जायगा। बालकों को ऐसा लगना चाहिए कि शिक्षकों के साथ हमारा मां-बाप जैसा संबंध है। इतना कर सको, तो आपका काम पूरा हुआ।"

कल सबेरे से लुंगी और एक कुर्ता ही मेरा वेश रहेगा

दक्षिण अफ्रीका में जेल से छूटने के बाद जब गांधीजी पहली बार फीनिक्स आये तब उन्होंने अपने भतीजे मगनलाल गांधी से कहा, "मेरे कहने पर हजारों आदमियों ने अपनी आहुति दी है। मेरे प्रति उनकी जो श्रद्धा है, उसीके बल पर ये लोग इस दावानल में कूद पड़े। देखा न जा सके, ऐसा भीषण कष्ट उन्होंने भोगा। इन निरक्षर और भोले लोगों से मैं कैसे अलग रह सकता हूं! मुझे इनमें से एक बनकर रहना चाहिए। जबतक सत्याग्रह समाप्त नहीं होता, मैं कोट-पतलून नहीं पहनूंगा और न नेकटाई लगाऊंगा। इस सत्याग्रह के कारण जो विधवाएं हुई हैं, उनके आंसू पोंछने के लिए इतना तो मुझे करना ही चाहिए। कल सवेरे से लुंगी और एक कुर्त्ता ही मेरा वेश रहेगा। चाकू, पेंसिलें आदि चीजें रखने के लिए कल डरबन जाकर एक बगल का थैला सिलवा लूंगा।"

मगनलाल ने कहा, "लुंगी के बदले धोती पहनें, तो ठीक न होगा? घूमने-फिरने में वह अधिक अनुकूल रहेगी। फिर हमारा मूल पहनावा भी वही है।"

गांधीजी बोले, "बात सही है। मुझे धोती पसन्द भी है, परन्तु इस समय सवाल गिरमिटियों का है। उनमें से अधिकतर

लोग मद्रासी ही हैं। मेरी लुंगी फटी नहीं रहेगी, इतना अंतर रहेगा। वे लोग अधिकतर सिर पर कुछ-न-कुछ बांधते हैं, किन्तु हम लोगों ने यह पहले छोड़ दिया है। इसे दुबारा शुरू करने की जरूरत नहीं है। जो मरे हैं, उनकी याद में शोक के चिन्ह-स्वरूप मूंछों का मुण्डन भी जरूरी है। पैरों में चप्पल भी नहीं पहनूंगा। असंख्य गिरमिटियों को यहां पैरों में पहनने के लिए क्या मिलता है?"

मगनलाल बोले, "लेकिन आपके पैर उन लोगों की तरह अभ्यस्त नहीं हैं। एड़ियों में यहां के तेज कंकड़ कदम-कदम पर चुभेंगे। आपको अधिक कष्ट होगा।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "ठीक है। मेरे पैर के तलवे तुम लोगों से ज्यादा मुलायम हैं। बिवाई भी फटी रहती हैं, किन्तु जब मैं और लोगों को ऐसे दुःख में धकेल दूं तब कुछ कष्ट मुझे भी तो उठाना चाहिए न! बहुत पीड़ा होगी तो थोड़ा धीमे चला जायगा।"

और गांधीजी अपनी बात पर दृढ़ रहे। उस पोशाक को पहनने के बाद वह 'लंगोटीबाबा' के रूप में विख्यात हो गये।

ओहो, सप्तर्षि आये हैं !

श्री चोखावाला का विवाह सेवाग्राम में होना निश्चित था। गांधीजी ने उन्हें लिखा, "अकेले चले आना, हम दो बनाकर भेज देंगे।"

लेकिन चोखावाला को अकेले जाना अच्छा नहीं लगा। वह अपने साथ सात मित्रों की बरात बनाकर ले गये। उन्हें देखकर गांधीजी मुस्कराये और बोले, "ओहो, सप्तर्षि आये हैं !"

बरातियों में एक महिला रोहणीबहन भी थीं। उन्हींको लक्ष्य करके हरवदन ने कहा, "बापू ऋषि अकेले नहीं हैं, साथ में अरुंधती भी हैं।"

आश्रम के पास एक खेत में अमरूद के पेड़ के नीचे केले के चार पौधे लगाकर लग्नमण्डप तैयार किया गया था। आम और अशोक के पत्तों के बंदनवार बनाये गए। आदेश हुआ कि ठीक ३ बजे लग्न संपन्न होगा।

उन दिनों देशी राज्यों के प्रश्न को लेकर गांधीजी बहुत व्यस्त थे। अनेक लोग मंत्रणा के लिए आये हुए थे। उसी-के बीच में जब ३ बजने में दो मिनट शेष थे, तो गांधीजी उठे और ठीक ३ बजे लग्नमण्डप में पहुंच गये। वधू के पिता के रूप में उन्होंने सब विधि-सम्मत कार्य सम्पन्न किये। जब नवदम्पति ने उनके चरण छुए तो उन्होंने आशीर्वाद से उनकी

पीठ लाल कर दी। दोनों के दुपट्टों के छोर इतनी मजबूती से बांधे कि जीवन-भर खुल न सकें।

शहनाई ओर ढोलवाले यह अनोखा विवाह देखने आये थे। उन्होंने पूछा, "क्या वे बाजे बजा सकते हैं?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "खुशी से!"

इस मांगलिक अवसर पर गन्ने का रस, गुड़ और मूंगफली से सबका स्वागत किया गया। सब क्रियाएं पूर्ण होने में केवल ४५ मिनट लगे। विधि के समाप्त होते ही गांधीजी फिर अपनी कुटिया में पहुंचकर गम्भीर मन्त्रणा में व्यस्त हो गये।

: ४१ :

हिन्दू-मुसलमानों को एक-दूसरे की खोट निभानी होगी

राष्ट्रीय महासभा के अध्यक्ष मौलाना मोहम्मद अली थे। उसी वर्ष अपने एक भाषण में, किसी संदर्भ में, उन्होंने कहा, "मैं एक फाज़िर (व्यभिचारी) और फासिद (दुश्चरित्र) मुसलमान को भी महात्मा गांधी से अच्छा मानता हूं।"

यद्यपि यह वाक्य किसी विशेष संदर्भ में कहा गया था, लेकिन हिन्दू कांग्रेसियों के दल में खलबली मच गई। अनेक व्यक्तियों को कांग्रेस के अध्यक्ष का यह भाषण असहनीय प्रतीत हुआ। श्री महावीर त्यागी ने तो इस प्रश्न को लेकर अध्यक्ष के प्रति अविश्वास का प्रस्ताव तक आल इंडिया कांग्रेस कमेटी

को भेज दिया। इसका अनुमोदन किया श्री नरदेव शास्त्री ने। उस समय कांग्रेस कमेटी के मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू थे। कायदे-करीने के आदमी थे। उन्होंने त्यागीजी से पूछा, "क्या तुम सचमुच इस प्रस्ताव को पेश करना चाहते हो?"

त्यागीजी ने उत्तर दिया, "बहुत सोच-समझकर भेजा है। मैं इसे अवश्य पेश करूंगा।"

प्रस्ताव एजेन्डा पर आ गया। बैठक अहमदाबाद में हुई और इससे पहले कि कोई दूसरा कार्य आरम्भ हो, मौलाना मोहम्मद अली ने यह कहते हुए कि पहले मेरी तकरीर का फैसला हो जाना चाहिए, त्यागीजी को पुकारा, "अविश्वास का प्रस्ताव पेश करो।"

त्यागीजी तुरन्त मंच पर पहुंचे और प्रस्ताव पेश करने के उद्देश्य से बोलना आरम्भ किया, "मि० प्रेसीडेन्ट एण्ड फ्रेंड्स..." कि तभी गांधीजी बोल उठे, "प्रस्ताव से पहले मुझे दो मिनट प्रस्तावक से बात करने का मौका होना चाहिए।"

मौलाना ने जोर से कहा, "आर्डर, आर्डर! पहले प्रस्ताव का फैसला होगा, फिर दूसरी बात होगी।"

परन्तु महात्माजी क्या चुप होनेवाले थे! उन्होंने त्यागीजी से पूछा, "तुम्हें तो मुझसे बात करने में एतराज नहीं है?"

त्यागीजी ने उत्तर दिया, "नहीं।"

गांधीजी बड़े जोर से हँसे। बोले, "जब मैं और वह राजी तो बीच में क्यों बोलता है काज़ी!"

सारी सभा अट्टहास से गूंज उठी। गांधीजी ने त्यागीजी से कहा, "यह प्रस्ताव तो ठीक नहीं है। मौलाना ने तो इसमें

किसी और को तो कुछ कहा नहीं। महात्मा गांधी से फाजिर, फासिद मुसलमान को अच्छा समझने की बात है। इसमें कोई गाली तो नहीं है। गाली का सबूत तो उसका लगना ठहरा। गांधी तो इसका लगना स्वीकार नहीं करता। फिर तो यह खलास हो गई।"

त्यागीजी ने उत्तर दिया, "महात्मा गांधी का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। इस तकरीर के अनुसार अध्यक्ष की निगाह में एक बदमाश और बदचलन मुसलमान भी दूसरे सम्प्रदाय के श्रेष्ठतम व्यक्ति से ऊंचा है। आजकल जगह-जगह हिन्दू-मुसमानों के दंगे हो रहे हैं। ऐसी तकरीर जलती हुई आग में पेट्रोल का काम करेगी।"

गांधीजी बोले, "तुम्हें इस प्रस्ताव के पास हो जाने की आशा है। कितने वोट मिलेंगे?"

त्यागीजी ने कहा, "दो वोट तो पक्के हैं। पास हो या न हो, यह तो रिकार्ड पर आ ही जायगा कि कांग्रेस अध्यक्ष की तकरीर पर कुछ लोगों को आपत्ति थी।"

महात्माजी बोले, "ऐसी बात लाने से कांग्रेस का रिकार्ड अच्छा होने के बजाय और काला होगा। हिन्दू-मुसलमान को साथ रहना है, तो एक-दूसरे के खोट को निभाना पड़ेगा। तुम जानते हो, मित्रता किसे कहते हैं?"

त्यागीजी ने कहा, "एक-दूसरे को प्यार करने को मित्रता कहते हैं।"

गांधीजी बोले, "नहीं, यह तो बदमाशी है। मित्रता के माने तो एक-दूसरे के खोट को निभाना और मुसीबत में काम

आना है। जो ऐसा नहीं करता, वह मित्र नहीं। यह प्रस्ताव ठीक नहीं है।"

लेकिन त्यागीजी किसी भी शर्त पर प्रस्ताव वापस लेने को तैयार नहीं थे। अन्त में गांधीजी ने कहा, "एक बात बताओ, तुम अक्लमंद हो या महात्मा गांधी ?"

त्यागीजी ने उत्तर दिया, "महात्मा गांधी।"

गांधीजी तुरन्त बोले, "फिर तो हो गया। एक बेवकूफ को अक्लमन्द की बात माननी होगी। मैं पहले से जानता था बेवकूफ को अक्ल की दलील नहीं, बेवकूफी की पसन्द आती है। अब तो वापस लोगे।"

त्यागीजी क्या करते ! प्रस्ताव वापस ले लिया।

: ४२ :

लो, यह नारंगी खालो

सन् १९३४ में गांधीजी दक्षिण की यात्रा कर रहे थे। तब वह 'गांधी-कुट्टि' नामक स्थान पर भी गये थे। वहां एक युवती रहती थी गौरी। वह गांधीजी को अपने घर लिवा ले जाना चाहती थी। इसलिए वह उपवास कर रही थी। वह गांधीजी के पास आई, तो उसका मन भरा हुआ था। स्वर रुंध गया था। एक शब्द भी नहीं बोल सकी। गांधीजी ने पूछा, "आखिर उपवास क्यों कर रही हो ?"

आंसुओं से भरी आवाज में उसने उत्तर दिया, "मैं

आपको अपने घर लिवा ले जाना चाहती हूं। मैं आपको अपने जेवर दूंगी।"

गांधीजी बोले, "यह तो अच्छा है, पर पहले तुम्हें अपना यह व्रत तोड़ देना होगा।"

वह बोली, "नहीं, जबतक आप वहां चलने का वचन नहीं दे देते तबतक मैं अपना व्रत नहीं तोड़ सकती।"

गांधीजी ने उसे एक नारंगी देते हुए कहा, "वचन लेने की बात छोड़ो। लो, यह नारंगी खा लो। सौदा न ठहराओ। मेरा विश्वास करो। तुम्हारी तो अपने अटूट प्रेम में श्रद्धा होनी चाहिए।"

भोली लड़की! वह यह समझ ही नहीं पाई कि वचन मिल चुका है। उसने अब भी खाने से इन्कार कर दिया। मीराबहन ने वह नारंगी छीलकर उससे कहा, "हां-हां, बापू तुम्हारे यहां आयंगे।"

अब वह लड़की मुस्कराने लगी। उसने नारंगी ले ली। उसकी उम्र २१ वर्ष की थी। उसका विवाह हो चुका था। उसने कहा, "जो गहने मैं दूंगी, वे मैं कभी नहीं पहनूंगी।"

गांधीजी उसे और परखना चाहते थे। उसका पति वहीं खड़ा हुआ था। गांधीजी ने उससे पूछा, "क्यों भाई, यह किसने सुझाया था कि तुम्हारी पत्नी अपने जेवर मुझे दे दे?"

पति ने उत्तर दिया, "किसीने नहीं। इसकी यह स्वयं की इच्छा थी। फिर मैंने भी अपनी स्वीकृति दे दी।"

वह युवक चालीस रुपये मासिक कमाता था। गांधीजी ने कहा, "प्रेम की उमंग में आकर अब तुम कभी उसके लिए

गहने बनवाने के मोह में न पड़ना। अच्छा तो यह होगा कि तुम दोनों किफायत के साथ सादा जीवन बिताओ।"

गौरी और उसके पति दोनों ने गांधीजी की यह बात स्वीकार कर ली। इसके बाद गांधीजी उनके घर गये। वहां गौरी ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार कुछ जेवर भेंट किये।

: ४३ :

मैं खुशी से इसका प्रबंध कर दूंगा

डेक्कन कालेज में महार जाति का एक विद्यार्थी पढ़ता था। नाम था उसका जाधव। उसने गांधीजी को एक पत्र लिखा और टेलीफोन द्वारा मिलने का समय मांगा।

पत्र पढ़कर गांधीजी बोले, "बेचारा जरूर किसी मुश्किल में होगा। इसे टेलीफोन से आज ही आने को कह दो।"

ऐसा ही किया गया। वह आया। गांधीजी ने उससे बड़ी आत्मीयता से बातें कीं। छोटी-से-छोटी बातें पूछीं—जैसे पिता-जी क्या करते हैं? कुटुम्ब में कितने आदमी हैं? जब उन्हें यह पता लगा कि उसके पिता अन्धे हैं, तो पूछा, "उन्हें कितनी पेंशन मिलती है? तुम खुद क्या खाते-पीते हो?"

जाधव ने उत्तर, "मैं भगत हूं। ढूंडो का गुरु हूं। गोमांस-शराब आदि कुछ नहीं छूता। मुझे बीस रुपये छात्रवृत्ति मिलती है।"

गांधीजी ने पूछा, "कालेज में तुम्हें कितना खर्च करना

पड़ता है ? क्या-क्या पढ़ते हो ?"

इस प्रकार बहुत देर तक उससे बातें करते रहे। समझ गये कि लड़का सच्चा है। जाते समय उसने दस रुपये की सहायता चाही।

गांधीजी ने कहा,"मैं बड़ी खुशी से इसका प्रबंध कर दूंगा।"

: ४४ :

गालियों से हमारा क्या बिगड़ता है !

श्री गोविन्ददासजी कौंसुल नाम के एक सज्जन थे। उन्होंने गांधीजी के जीवन की साधारण जानकारी देनेवाली एक मामूली-सी पुस्तक अंग्रेजी भाषा में लिखी थी। उसका नाम रखा था, 'भारत का पक्का बदमाश, महात्मा गांधी' (महात्मा गांधी, दी ग्रेट रोग आफ इण्डिया)।

इस पुस्तक को वह गांधीजी को उनके जन्म-दिन पर भेंट करके उनकी राय प्राप्त करना चाहते थे। इस काम के लिए उन्होंने अपने शिष्य रणजीत कुमार सील को सेवाग्राम भेजा। मार्ग में उसे पता चला कि गांधीजी तो इसी समय दिल्ली जा रहे हैं। बस, वह अपनी गाड़ी छोड़कर जिस गाड़ी में गांधीजी सफर कर रहे थे उसीमें सवार हो गया। संयोग से डिब्बे में श्रीपाद जोशी भी सफर कर रहे थे। उन्होंने उस पुस्तक का नाम देखकर कहा, "भैया, पुस्तक का नाम कुछ शिष्टतापूर्वक रखते तो क्या बिगड़ जाता ?"

उसने उत्तर दिया, "'रोग' शब्द का अर्थ केवल बदमाश ही नहीं होता, 'झुण्ड से बिछड़ा हुआ हाथी या अन्य जानवर' यह भी होता है। फिर प्यार में भी तो इस शब्द का प्रयोग किया जाता है।"

जो हो, परिचय हो जाने पर सील ने श्रीपाद जोशी से अपने साथ गांधीजी के पास चलने के लिए कहा, लेकिन श्रीपाद तैयार नहीं हुए। तब वह अकेला ही अगले स्टेशन पर गांधीजी के डिब्बे में चला गया। जब वह उन्हें पुस्तक देने लगा तो उनके पास बैठे हुए एक भारी-भरकम सज्जन की दृष्टि उसपर पड़ी। पुस्तक का नाम पढ़ते ही वह क्रोध से भर उठे। वह सील के हाथ से पुस्तक छीनकर दूर कोने में फेंकने ही वाले थे कि सहसा गांधीजी ने उधर देखा और बोले, "जरा इधर तो लाओ, देखूं क्या है?"

उन सज्जन ने कहा, "आप क्यों अपना वक्त बर्बाद करते हैं। व्यर्थ की गाली-गलौज होगी।"

गांधीजी बोले, "भले ही हो। गालियों से हमारा क्या बिगड़ता है?"

उन्होंने पुस्तक हाथ में लेकर सील से पूछा, "तुम क्या चाहते हो?"

सील ने लेखक का पत्र उन्हें देते हुए कहा, "इस पुस्तक के विषय में आपकी सम्मति चाहिए।"

आस-पास जो लोग खड़े हुए थे, वे चकित होकर उसका मुंह देखने लगे, लेकिन गांधीजी तो पुस्तक के पन्ने उलटने-पलटने में व्यस्त हो गये। इधर-उधर से पढ़कर वह हँसे।

बोले, "तुम्हारे गुरु ने जो कुछ कहना था, वह कह दिया है। अब मैं उसमें क्या जोड़ सकता हूं ?"

सील ने कहा, "आप जो भी कहना चाहते हों, सम्मति के रूप में लिख दीजिये।"

गांधीजी बोले, "अभी लिखे देता हूं।"

और उन्होंने अपने हाथ से लिखा :

"प्रिय मित्र,

मैंने अभी पांच मिनट तक आपकी पुस्तक सरसरी तौर पर देखी। इसके मुखपृष्ठ या मजमून के विरोध में मुझे कुछ भी नहीं कहना है। आपको पूरा अधिकार है कि जो पद्धति आपको अच्छी लगे, उसके द्वारा आप अपने विचारों को प्रकट करें। भवदीय,

रेल में, १-१०-३९ मो० क० गांधी"

: ४५ :

सच्चे हिन्दुस्तान का दर्शन तो गांव में ही हो सकता है

लार्ड लोदियन जब भारत आये थे, तो गांधीजी से मिलने सेवाग्राम गये थे। सेवाग्राम वर्धा से कोई पांच मील दूर है। गांधीजी ने श्री जमनालाल बजाज से कह दिया था कि जब लार्ड लोदियन यहां आवें, तो उन्हें बैलगाड़ी में बैठाकर ही लाया जाय।

और सचमुच वह बैलगाड़ी में ही बैठकर सेवाग्राम पहुंचे। उन्होंने वर्धा की जगह सेवाग्राम में ही गांधीजी की कुटिया के पास रहना पसन्द किया।

गांधीजी अपने मेहमानों के स्वागत-सत्कार का बड़ा ध्यान रखते थे। उन्होंने लार्ड महोदय के सोने के वास्ते लकड़ी के तख्त और नहाने-धोने के लिए उचित सुविधा की। भोजन के लिए भी जैसे कि आश्रमवासी पंगत में बैठकर खाते थे उसी तरह फर्श पर बैठने की व्यवस्था रक्खी। गांधीजी खाने की हर चीज खुद ही परोसते थे। भोजन में भाखरी, उबला साग, दूध, दही या खजूर जैसी चीजें ही रहती थीं। आश्रम का यह नियम था कि वहां की खेती में जो साग-सब्जी पैदा हो, वही खाई जाय। उन दिनों वहां कद्दू की बहुत फसल होती थी। लार्ड महोदय को भी दोनों समय वही साग खाने को मिला। उन्होंने कभी कोई आपत्ति नहीं की, बल्कि कहा, "मैंने अपने तीन दिन यहां जिस शांति से बिताये वैसे इस जीवन में पहले कभी नहीं बिताये थे।"

वह बैलगाड़ी में बैठकर ही वापस गये। गांधीजी ने कहा, "जिन दिनों मैं बम्बई में था उन्हीं दिनों मैं इनसे मिल सकता था और चाहता तो यहां भी लाने-ले जाने के लिए कार का और खिलाने-पिलाने के लिए दूसरी चीजों का तथा सुलाने-बैठाने के लिए मेज-कुर्सी, पलंग वगैरा का इंतजाम करा सकता था, लेकिन तब मैं इन्हें सच्चे हिन्दुस्तान का दर्शन न करा सकता। सच्चे हिन्दुस्तान का दर्शन तो गांव में ही हो सकता है। हमारे किसान बेचारे मोटर कहां से लायें? उनके पास

तो बैलगाड़ी ही होती है। ऐसे मौकों के अलावा इन लोगों को यह बात मुश्किल से ही समझाई जा सकती है।"

: ४६ :

जेल जाना पड़े तो उसे प्रायश्चित्त समझिये

दक्षिण अफ्रीका के एक व्यापारी पारसी रुस्तमजी सेठ गांधी-जी के साथी थे। वह चुंगी की चोरी किया करते थे। एक बार उनकी चोरी पकड़ी गई। वह घबरा उठे और दौड़े-दौड़े गांधीजी के पास पहुंचे। उनकी आंखों से आंसू बह रहे थे। उन्होंने कहा, "भाई, मैंने आपको धोखा दिया। मेरा पाप आज प्रकट हो गया। मैं चुंगी की चोरी करता रहा हूं। अब तो जेल जाने के अलावा और कोई गति नहीं है। मैं बरबाद हो गया। इस संकट से अब आप ही मुझे उबार सकते हैं। मैं तो आपसे कुछ भी नहीं छिपाता था, लेकिन यह व्यापार की बात थी। सोचता था, आपसे क्या कहूं। अब पछताता हूं।"

गांधीजी ने सांत्वना देते हुए उनसे कहा, "मेरा तरीका तो आप जानते ही हैं। छुड़ाना न छुड़ाना तो खुदा के हाथ में है,लेकिन आप अपराध स्वीकार करें, तो मैं छुड़ा सकता हूं।"

यह सुनकर रुस्तमजी सेठ का चेहरा म्लान हो आया। बोले, "लेकिन क्या आपके सामने अपराध स्वीकार कर लेना ही काफी नहीं है ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "आपने अपराध तो सरकार का किया है। मेरे सामने स्वीकार करने से क्या होगा ?"

सेठ बोले, "अन्त में मैं वही करूंगा जो आप कहेंगे। पर आप मेरे पुराने वकील से सलाह कर लीजिए। वह मेरे मित्र भी हैं।"

वे लोग पुराने वकील के पास गये। केस की जांच करने के बाद उसने कहा, "यह मामला जूरी के पास जायगा। यहां के जूरी हिन्दुस्तानी को क्यों छोड़ने लगे ? पर फिर भी मैं आशा नहीं छोडूंगा।"

पारसी रुस्तमजी ने उत्तर दिया, "इस मामले में मिस्टर गांधी मेरे सलाहकार हैं। वही इसको संभालेंगे। आप उन्हें जो सलाह उचित समझें, देते रहिये।"

दुकान पर लौटकर गांधीजी ने रुस्तमजी सेठ को समझाया, "मुझे यह मामला अदालत में जाने लायक नहीं दिखाई देता। मुकदमा चलाना या न चलाना चुंगी अधिकारी के हाथ में है। मैं उससे और सरकारी वकील से मिलने को तैयार हूं, लेकिन मुझे उनके सामने चोरी को स्वीकार करना होगा। मैं सोचता हूं कि जो दण्ड वे निश्चित करें उसे स्वीकार कर लेना चाहिए। परन्तु वे न माने तो आपको जेल जाने के लिए भी तैयार रहना चाहिए। मैं सोचता हूं, लज्जा जेल में नहीं है, चोरी करने में है। लज्जा का काम तो हो चुका। जेल जाना पड़े तो उसे प्रायश्चित्त समझिए और सच्चा प्रायश्चित्त तो भविष्य में ऐसा न करने की प्रतिज्ञा में है।"

रुस्तमजी सेठ की प्रतिष्ठा दांव पर लगी हुई थी। उन्होंने

कहा, "मैं तो आपसे कह चुका हूं कि मेरा सिर आपकी गोद में है। आप जैसा करना चाहें, कीजिये।"

गांधीजी चुंगी अधिकारी से मिले। उन्हें सबकुछ बता दिया। अधिकारी ने कहा, "मैं इस बूढ़े पारसी को चाहता हूं। उसने मूर्खता की है, पर मेरा धर्म तो आप जानते हैं। बड़े वकील जैसा कहेंगे, वैसा मुझे करना होगा। आप उन्हें समझाइए।"

गांधीजी ने सरकारी वकील को पत्र लिखा। उनसे मिले। उनके सामने यह सिद्ध कर दिया कि वह कुछ छिपा नहीं रहे हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि रुस्तमजी पर मुकदमा नहीं चलाया गया। उन्होंने जो चोरी स्वीकार की थी, उससे दुगना रुपया उनसे ले लिया गया। उन्होंने अपनी चुंगी की चोरी की वह कहानी लिखकर शीशे में मढ़वा ली और उसे अपने दफ्तर में टांग दिया।

: ४७ :

तूने स्वयं यहां आने की मांग की या. . .?

९ अगस्त, १९४२ को सबेरे-ही-सबेरे गांधीजी को गिरफ्तार किया गया और शाम को कस्तूरबा गांधी और सुशीला नैयर को गिरफ्तार करके पुलिस बम्बई की आर्थर रोड जेल में ले गई।

वहां जिस कमरे में बा को रखा गया, वह बहुत गन्दा

था। उनका मन पहले ही दुखी था। अब शरीर पर भी असर पड़ा और उन्हें दस्त आने लगे। साथ में बुखार भी हो आया।

अन्त में अधिकारी बा और सुशीलाबहन को आगाखां महल बापू के पास ले गये। उन्हें देखते ही गांधीजी की त्यौरियां चढ़ गईं। उन्होंने सोचा—कहीं बा मेरा वियोग न सह पाने के कारण, मन की कमजोरी से तो मेरे पीछे-पीछे यहां नहीं आ गई है ! वह अपना कर्त्तव्य तो नहीं भूल गई ?

बा की इतनी खराब हालत देखे बिना ही ज़रा तीखे स्वर में उन्होंने पूछा, "तूने स्वयं यहां आने की मांग की या सरकार ने ही तुझे पकड़कर यहां भेजा ?"

बा कुछ क्षण चुप रहीं। उनकी समझ में नहीं आया कि गांधीजी क्या पूछ रहे हैं। सुशीलाबहन सबकुछ समझ गईं। बोलीं, "हम गिरफ्तार होकर यहां आई हैं, बापूजी।"

अब गांधीजी का सवाल बा की समझ में आया। उन्होंने कहा, "नहीं-नहीं, मैंने आने की मांग नहीं की। सरकार ने ही हमें पकड़ा है।"

यह सुनकर बापू का मन शांत हुआ।

: ४८ :

तूने तो बहन, बहुत दिया है

तिलक स्वराज्य कोष इकट्ठा किया जा रहा था। उसमें दान लेने के लोभ से गांधीजी एक परिवार में गये। वहां एक

छोटी-सी बच्ची थी। उम्र होगी कोई ६-७ साल की। नाम था माधुरी। गांधीजी उसकी ओर आकृष्ट हुए। अपने पास खींचकर उन्होंने उसका सिर अपनी गोद में रख लिया। माधुरी धीमे स्वर में बोली, "मैंने आपके साथ छल किया है। मैंने आपको सिर्फ डेढ़ रुपया ही दिया।"

गांधीजी ने कहा, "तब तो मैं सचमुच ही छला गया। तू तो इतने सारे गहने पहने हुए है और मुझे डेढ़ रुपया ही दिया!"

यह कहकर गांधीजी ने माधुरी के नन्हें से हाथ को अपने हाथ में ले लिया। उसकी चूड़ी उनके हाथ में नाचने लगी। उन्होंने कहा, "अब तो तुझे प्रायश्चित्त करना ही चाहिए। नन्हे बच्चे बिलकुल निर्दोष होते हैं, वे किसीको छलते नहीं। प्रायश्चित्त का मतलब है पाप धोना अर्थात् मैल साफ करना। अब तो तुझे मैल अवश्य साफ करना चाहिए।"

माधुरी ने पूछा, "यह मैल अब कैसे धुल सकता है?"

गांधीजी बोले, "मैल साफ करने का सहज उपाय है। तू यह तो समझ ही गई है कि तुझे असल में गहने देने चाहिए थे, इसीसे तूने मेरे साथ छल किया है। अब तो तू मुझे सारे गहने दे दे, तो तेरा पाप धुल जायगा।"

यह सुनकर माधुरी का दीप्त मुख मलिन पड़ गया, लेकिन गांधीजी कहते रहे, "बच्चों को गहने से क्या लेना-देना! हम तो अपने काम के द्वारा ही शोभा पा सकते हैं। गहने तो खो भी जाते हैं। बेहतर तो यह है कि इन्हें अच्छे काम के लिए देदें। तू तो बहुत समझदार लड़की जान पड़ती है। तूने अपना

गुनाह भी स्वीकार कर लिया है। तुझे खुशी-खुशी सब गहने दे देने चाहिए। उनसे मैं गरीबों को चर्खे खरीदकर दूंगा। तेरे जैसे बच्चों को पढ़ाऊंगा। तेरी जैसी लड़कियों ने भी अपने गहने दिये हैं।"

माधुरी के कानों में हीरे की दो लौंगें थीं। हाथों में दो सोने की चूड़ियां और एक कांच की चूड़ी। वह धीमे स्वर में बोली, "मैं यह कांच की चूड़ी दूं तो ठीक होगा ?"

गांधीजी सोचने लगे, इस बच्ची को क्या उत्तर दूं ! इसे अपने साथ ले जाकर अपनी बेटी बना लूं, लेकिन मेरी तो ऐसी कितनी ही बेटियां हैं। फिलहाल तो मैं केवल कृपण बनिया हूं। लेना ही जानता हूं। यह सोचकर वह बोले, "तेरी कांच की चूड़ी को भी मैं पैसे में बदल सकता हूं, लेकिन मुझे तो तेरे सारे गहने चाहिए। उन्हें देने में कौन-सी बड़ी बात है ? एक तो तेरा पाप घुल जायगा और मुझ जैसे का काम बन जायगा। क्या मुझे सब गहने नहीं देगी ?"

वह बोली, "सोने की चूड़ियां तो कतई नहीं दूंगी, लेकिन क्या आप लौंग लेंगे ?"

गांधीजी ने कहा, "यह तो तूने ठीक कहा, लेकिन अगर तू मुझे अपनी चूड़ियां भी देदे तो कितना अच्छा हो !"

माधुरी कुछ मुरझा-सी गई। गांधीजी ने उसे चूमा और कहा, "अच्छा, ठीक है, मुझे अपनी लौंग ही देदे।"

माधुरी दौड़ी हुई अन्दर गई और एक मिनट बाद लौटकर लौंगें उतारने लगी। गांधीजी बोले, "तूने मां से अनुमति ले ली है ?"

लौंग उन्हें देते हुए बोली, "हां, मां से अनुमति ले ली है।"

एक लौंग गिर गई थी। उसे ढूंढ़कर माधुरी ने गांधीजी को दे दिया, लेकिन गांधीजी का लोभ तो किसी तरह शान्त हो ही नहीं रहा था। उनकी नजर चूड़ियों पर से हटती ही नहीं थी। उन्होंने पहले तो उस बच्ची का नाम पूछा, फिर उसके माता-पिता का नाम पूछा। तब बोले, "अरे माधुरी ! इस चूड़ी के लिए इतना लोभ क्यों ! तेरी जैसी निर्दोष लड़की को गहने से क्या काम ! क्या तू अपनी चूड़ियां नहीं देगी ?"

इस बार माधुरी पिघल गई। उसने एक चूड़ी उतारकर गांधीजी के हाथ पर धर दी। आनन्द से गद्गद् होकर गांधीजी बोले, "तूने कमाल कर दिया। अब अगर तू दूसरी चूड़ी देगी भी तो नहीं लूंगा, लेकिन तूने इतना जो दिया है वह खुश होकर ही दिया है न ? वापस लेना हो तो अभी भी ले ले।"

ऐसा कहकर उन्होंने गहने उसके आगे रख दिये। वह बोली, "यह तो मैंने आपको खुशी-खुशी दिये हैं। मुझे वापस नहीं चाहिए।"

दूसरे बच्चे भी इस दृश्य को देख रहे थे और उनका वार्तालाप सुन रहे थे। उनमें एक थी पुष्पा। माधुरी जितनी ही बड़ी होगी। उसने चुपचाप अपनी चूड़ी उतारकर गांधीजी के हाथ पर रख दी। उन्होंने पूछा, "तूने मां से आज्ञा ले ली है ?"

वह बोली, "हांजी। मुझे मां ने आज्ञा दी, इसीलिए तो दे रही हूं।"

गांधीजी ने कहा, "गहने लेने की मेरी जो शर्त है, क्या

तू उसे जानती है ? जो लड़कियां मुझे गहने देती हैं वे जब-तक स्वराज्य नहीं मिलता अपने पिताओं से वैसे ही नये गहनों की मांग नहीं कर सकेंगी । हां, और गहने हों और पहनने को मन करे तो पहन सकती हैं ।"

पुष्पा बोली "मेरे पास ऐसी दूसरी चूड़ी है । मैंने खुशी से अपनी चूड़ी दी है ।"

माधुरी अभी वहीं थी । मां के साथ कुछ बात कर रही थी । उसने अब कांच की और सोने की दूसरी चूड़ी भी उतार-कर गांधीजी के हाथ में रख दी ।

वह बोले, "कांच की चूड़ी तो ले सकता हूं, लेकिन मैंने कहा था न कि अगर तू दे भी तो मैं सोने की दूसरी चूड़ी नहीं लूंगा । इसलिए यह तू मुझे मत दे । तूने तो बहन, बहुत दिया है ।"

वह सहज दृढ़ता से बोली, "मैं तो आपको दे चुकी । मुझे यह नहीं चाहिए । मैंने आपको खुशी से दी है । इन्हें आप रखिए ।"

गांधीजी जैसे भीग आये । उन्होंने माधुरी को अपने हृदय से लगा लिया ।

हम गाय की सिर्फ पूजा करते हैं

गांधीजी उन दिनों बिहार के गांवों में घूम रहे थे। वहां के लोग बड़े श्रद्धालु और धर्म-भीरु होते हैं। एक गांव में जिन भाई के घर गांधीजी ठहरे थे, उनके यहां कुछ मवेशी थे। उनमें एक बूढ़ी गाय थी। उसे न कोई खिलाता था, न पानी पिलाता था। कभी बेचारी ने एक-एक बार में दस-दस सेर दूध दिया था। इसलिए वह दरवाजे को छोड़कर कहां जाती! उसके आगे वह खड़ी रहती थी। जो लोग गांधीजी से मिलने के लिए आते वह उसे धक्का देकर ही रास्ता बनाते थे। तब यह स्वाभाविक ही था कि गांधीजी का ध्यान उसकी ओर जाता। उन्होंने मकान-मालिक से पूछा, "यह गाय आपकी है?"

"जीहां, मेरी ही है। बहुत अच्छी गाय थी, लेकिन अब यह दूध नहीं देती। इसलिए घर से निकाल दिया है। इसकी खुराक हमें भारी पड़ती है। बापूजी, इसके बछड़े को देखिए। आपसे एक प्रार्थना है कि देश में अब स्वराज्य आ ही चुका है। आप गोवध बंद करा दीजिये।"

उसने और भी बहुत-कुछ कहा, गांधीजी चुपचाप सुनते रहे। फिर अत्यन्त दुःखभरे स्वर में बोले, "भाई, गाय का वध तो आप कर रहे हैं। मैं सरकार से कानून बनाने के लिए

क्या कहूं ?"

अचरज से भरकर उस भाई ने कहा, "बापूजी, आप कैसी बातें करते हैं ! हमारे परिवार का एक छोटा बालक भी भोजन नहीं कर सकता जबतक कि गाय को गोग्रास न दे दिया जाय।"

गांधीजी बोले, "हम गाय की सिर्फ पूजा करते हैं। सच्ची गोरक्षा क्या है, यह नहीं जानते। कसकर उसका दूध दोहते हैं और खिलाने में कंजूसी करते हैं। और जब वह बूढ़ी हो जाती है तो या तो उसे पिंजरापोल में भर्ती कर देते हैं या फिर रास्ते में भटकने के लिए छोड़ देते हैं। शास्त्रीय पद्धति से उसका लालन-पालन नहीं करते।"

और गांधीजी उस भाई को फिर शास्त्रीय पद्धति के लाभ गिनाने लगे।

: ५० :

मैं अनेक रोगियों को छोड़कर आया हूं

गांधीजी और वायसराय के बीच में जब बातें चल रही थीं एक दिन उन दोनों ने यह अनुभव किया कि फिलहाल उनके मध्य मतैक्य का कोई आधार नहीं है। तब वायसराय ने शंका प्रकट की कि उन्हें फिर क्यों मिलना चाहिए ? यदि कोई नया रास्ता प्रस्तुत न करना हो, तो दोनों एक-दूसरे का समय क्यों बर्बाद करें ! क्या जनता को संधि-वार्ता के इस

तरह अकस्मात भंग हो जाने पर आघात नहीं लगेगा ?

गांधीजी ने कहा, "जनता को झूठी आशा में रखने के बजाय उसे नग्न वास्तविकता से परिचित कराना वीरता का मार्ग होगा।"

वायसराय ने आश्चर्य से पूछा, "आप सेवाग्राम के लिए कब रवाना होंगे ?"

गांधीजी ने कहा, "अगर सम्भव हो, तो आज शाम। वैसे जबतक आपको मेरी जरूरत हो, मैं आपकी इच्छा का पालन करने को तैयार हूं। मैं १३ तारीख तक आसानी से रुक सकता हूं। किन्तु अगर जरूरत न हो तो मुझे तत्काल सेवाग्राम के लिए चल पड़ना चाहिए। मेरा दिल तो वहां पड़ा है। मैं अनेक रोगियों को छोड़कर आया हूं। वे मेरे अत्यन्त मूल्यवान साथी-कार्यकर्त्ता हैं। उनके साथ रहने में मुझे बड़ा सुख मिलता है।"

: ५१ :

इस देह का भी भार न हो तो कितना अच्छा !

हरिजन-यात्रा के समय घूमते-घूमते गांधीजी आंध्र प्रान्त में पहुंचे। एक दिन वह वहां एक बहुत बड़ी सभा में भाषण देकर चुके ही थे कि एक नवयुवक भीड़ को चीरता हुआ मंच की ओर बढ़ने लगा। खादी के कपड़े में लपेटी हुई एक वस्तु

को उसने छाती से चिपका रखा था। उसको इस प्रकार आते देखकर मंच पर बैठे हुए व्यक्ति ने सोचा यह कोई सनातनी तो नहीं है ! क्या वह उनसे बहस करना चाहता है ? कहीं ऐसा तो नहीं कि पास आकर वह गांधीजी पर हमला कर दे !

उन दिनों ऐसा होने की बहुत सम्भावना थी, लेकिन वह युवक तो तनिक भी क्रुद्ध नहीं है। न उसमें कोई जोश दिखाई देता है। वह तो बड़े विनम्र भाव से यही कह रहा है, "मुझे महात्माजी के पास जाने दीजिए।"

स्वयंसेवकों ने उसे रोका तब भी उसने उसी विनम्रता से कहा, "कृपाकर मुझे रोकिए नहीं। मुझे महात्माजी को एक भेंट देनी है।"

यह सुनकर स्वयंसेवक उसे गांधीजी के पास ले गये। पास पहुंचकर सफ़ेद खादी के कपड़े में लपेटा हुआ गांधीजी का चित्र उसने बाहर निकाला और उसे उनके चरणों पर रखते हुए बोला, "महात्माजी, मैं चित्रकार हूं। मैंने स्वयं इसे बनाया है। इसे आप स्वीकार कीजिये।"

गांधीजी ने वह चित्र अपने हाथ में ले लिया। उसे ध्यान से देखा। उनके मुख पर सन्तोष के भाव दिखाई दे रहे थे। परन्तु उन्होंने विनोद करते हुए कहा, "मैं इसे कहां ले जाऊं ? मेरा न घर है, न बार। मैं इसे कहां लगाऊंगा ?"

बेचारा युवक चित्रकार ! वह क्या उत्तर देता ! हाथ जोड़े खड़ा रहा। गांधीजी सहसा गंभीर हो उठे। बोले, "यह सारा बोझ बढ़ाकर क्या करूंगा ? मुझे तो लगता है

कि इस देह का भी भार न हो, तो कितना अच्छा ! इसलिए यह चित्र तुम अपने पास रखो ।"

: ५२ :

पाखण्डी की सेवा नहीं की जाती

अपनी मंगलौर-यात्रा में गांधीजी भंगी बस्ती देखने के लिए गये । ये लोग काफी सुखी दिखाई देते थे । फिर भी मुर्दार मांस खानेवाले और शराब पीनेवाले थे । गांधीजी ने उनसे कहा, "इतने गन्दे बच्चों को साफ बालकों के साथ रखने में मैं हिचकिचाऊंगा । जबतक तुम मुर्दार मांस खाना नहीं छोड़गे तबतक दूसरे हिन्दुओं को तुम्हारे साथ घुलमिल जाने को कैसे कह सकता हूं ?"

गांधीजी के इस प्रकार समझाने से उन सभीने शराब और मुर्दार मांस छोड़ने की प्रतिज्ञा की । गांधीजी वहां से जुलाहों के मोहल्ले में गये । ये लोग भंगियों को नहीं छूते थे । गांधीजी ने उनसे पूछा, तो उनकी ओर से एक वृद्ध ने उत्तर दिया, "उन्हें छूकर हम अपनी पवित्र देह क्यों विगाड़ें ? हम तो ब्राह्मण की संतान हैं । उन लोगों के कर्म नीच हैं ।"

गांधीजी बोले, "परन्तु मैं भंगी को छूता हूं, भंगी जैसा हूं, फिर भी तुम मुझे छूते हो ।"

उस वृद्ध ने उत्तर दिया, "आप तो महात्मा हैं । आपको कोई बाधा नहीं । हम अपनी देह नहीं विगाड़ेंगे ।"

गांधीजी बोले, 'तब तुम्हें बनिये-ब्राह्मण नहीं छूते तो क्या वे ठीक करते हैं ?"

वृद्ध ने उत्तर दिया, "उनसे कौन कहने गया था कि हम को छूग्रो। अपने घर में रहें। हमें क्या !"

गांधीजो बोले,"ओहो, ग्रच्छा तुम धन्धा क्या करते हो ?"

वृद्ध ने निर्लज्जता की हँसी हँसते हुए उत्तर दिया, "धंधा तो जन्म-पत्री देखने का करता हूं। ग्रापकी भी देख दूं ?"

गांधीजी बोले,"वाह, देख दो न। अपना पंचांग मंगाग्रो।'

इशारा पाकर एक बालक उसका पंचांग ले ग्राया। गांधी-जी ने ग्रपनी जन्म-पत्री देखने को कहा। ग्रब वह शरमा गया। बोला, "ग्रापकी जन्म-पत्री क्या देखें ! आप सारे देश को देख रहे हैं।"

गांधीजी बोले, "नहीं-नहीं, तो भी देखो तो सही।"

वृद्ध ने कहा. "नहीं, महाराज, आपकी नहीं। मैं तो उन लोगों की देखता हूं।"

लेकिन गांधीजी इस तरह चुप हो जानेवाले नहीं थे। उन्होंने उससे पंचांग पढ़ने के लिए कहा। लेकिन वह बिना पढ़े ही मेष, मिथुन ग्रौर कन्या की रट लगाने लगा। गांधीजी बोले, "यह तो तुम मुंह से बोल रहे हो। जो इसमें लिखा है, उसे पढो।"

ग्रब तो वृद्ध पकड़ा गया। बोला, "महाराज, यह मेरे से पढ़ा नहीं जाता। यह तो हमारा पेट भरने का धन्धा है।"

यह सुनकर गांधीजी उबल पड़े। उसे चुप रहने को कह-कर वह सबको सम्बोधित करते हुए बोले, "दाहोद में मुझे

एक ऐसा ही पाखण्डी मिला था। यह दूसरा है। मैं कहता हूं, ऐसे पाखण्डी मनुष्य की बात को तुम न मानना। मैं इसे कहता हूं कि इस पाखण्ड को छोड़ दे और ठगकर पेट भरने की बजाय मजदूरी करके पेट भर। इसने जो कुछ किया, वह मुझे खंजर भोंकने जैसा है। यह तुम्हें बेकार प्रपंच और झूठ सिखाता है। इसे काला अक्षर पढ़ना नहीं आता और बस केवल तुम्हें ठगता है। यदि यह ईमानदारी से मजदूरी न करे, तो इसे त्याग देना और भूखे मरने देना। पाखण्डी की सेवा नहीं की जाती। ऐसी नंगाई मेरे सामने नहीं चलेगी। यदि तुम भंगी को नहीं छूओगे तो मैं सबसे कहूंगा कि कोई तुम्हारे द्वार पर न आये। केवल भंगी मोहल्ले में ही आये।"

गांधीजी की इन बातों का उनपर असर हुआ। उन्होंने भंगियों को छूने का वचन दिया, लेकिन जहांतक मुर्दार मांस छोड़ने का प्रश्न था वे बोले, "यह हमारा धन्धा ठहरा। आपको वचन देकर क्या करें! कल ही फिर तोड़ें यह तो ठीक नहीं है। फिर भी विचार करके कुछ-न-कुछ करेंगे ही।"

: ५३ :

जीवन का उद्देश्य समझने के लिए ही पढ़ रहे हो

अप्रैल, १९१५ में कुम्भ हरिद्वार में पड़ा था। उस समय गांधीजी गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर पधारे थे और लग-

भग एक सप्ताह वहां ठहरे थे। प्रतिदिन एक निश्चित समय पर उनका प्रवचन होता था। साधारण चर्चा भी होती थी।

एक सप्ताह बाद जब वह विदा होने लगे तो उस अवसर पर सभी अध्यापक और छात्र उन्हें घेरकर खड़े हो गये। उस समय श्री उदयवीर शास्त्री उच्च श्रेणी के छात्र थे। उन्होंने साहस करके विनीत भाव से गांधीजी से एक प्रश्न पूछा, "अब आप जा रहे हैं। कृपया इस बात पर प्रकाश डालिये कि पढ़ाई के बाद हमारे जीवन का उद्देश्य क्या होना चाहिए?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "पढ़ाई के बाद जीवन का उद्देश्य क्या होना चाहिए, इसे समझने के के लिए ही तुम पढ़ रहे हो। यदि तब भी समझ में न आये, तो मेरे पास आ जाना। मैं बता दूंगा।"

यह उत्तर सुनने के बाद इस प्रश्न का फिर अवसर नहीं आया।

: ५४ :

आप भीड़ को समझा दीजिये

अपने दक्षिण-प्रवास में गांधीजी चिदंबरम भी गये थे। उसी दिन उन्हें अन्नामलायी विश्वविद्यालय की यूनियन में भाषण देने के लिए जाना था। कार में डाक्टर टी० एस० एस० राजन उनके साथ बैठे थे। विश्वविद्यालय से कोई आधा मील इस तरफ शहर की एक संकरी गली में एक घनी भीड़

उनकी राह देख रही थी। जैसे ही कार वहां पहुंची, भीड़ ने उन्हें रोक लिया। गांधीजी ने पूछा, "क्या बात है!"

भीड़ का एक प्रतिनिधि आगे आया। उसने अपनी बात समझाते हुए गांधीजी से कहा, "मैंने और मेरे दोस्तों ने एक भोज का इन्तजाम किया है। उसमें उच्च वर्ण के ब्राह्मण और हरिजन दोनों साथ-साथ बैठेंगे। पास ही एक विशेष पंडाल में उसका आयोजन है। आप एक मिनट उतरकर उसे देख लेने की कृपा करें।"

गांधीजी ने डा० राजन की ओर मुड़कर पूछा, "यूनिवर्सिटी कब पहुंचना है।"

डा० राजन बोले, "केवल दस मिनट शेष हैं।"

गांधीजी को यह भी मालूम हुआ कि उस दिन के कार्यक्रम में इस भोज के लिए कोई समय नहीं दिया गया था। उन्होंने डा० राजन से कहा, "आप भीड़ को समझा दीजिये कि दस मिनट के भीतर ही एक दूसरे आयोजन में हमें शामिल होना है। हमारे कार्यक्रम में बाधा डालना अनुचित है।"

लेकिन भीड़-तो-भीड़ थी। वह अड़ गई कि गांधीजी को उतरना ही होगा। लोग डा० राजन से बहस करने लगे। इसी बीच गांधीजी ने धीरे-से कार के दूसरे दरवाजे को खोला और चुपचाप उतरकर विश्वविद्यालय की ओर चल दिये। लोग डा० राजन से बहस में लगे थे, इसलिए वह आसानी से भीड़ को चीरकर बाहर निकल गये। पीछे आती हुई एक कार तेजी से आगे बढ़ी और उन्हें बैठाकर विश्वविद्यालय की ओर चल दी।

यह सब इतने आकस्मिक रूप में हुआ कि कई क्षण तक कोई कुछ समझ ही नहीं पाया। आखिर उन्हें पता लगा कि चिड़िया उड़ गई है। भीड़ सबकुछ भूलकर 'महात्मा गांधी की जय' पुकारने लगी और गांधीजी भी पीछे मुड़कर एक बालक के समान हाथ उठाकर हिलाने लगे जैसे कोई स्कूल का विद्यार्थी किसी झमेले से छुटकारा पाकर खुश होता है।

: ५५ :

इस तरह तू मेरी शिक्षाएं कितनी मानेगी ?

आगा खां महल से छूटने के बाद मनु गांधीजी के साथ ही बम्बई आ गई थी। आगे पढ़ने के लिए उसे अब अपने घर कराची जाना था। उसी समय उसे पता लगा कि सुशीला-बहन और प्यारेलालजी के दूसरे भाई के घर में पुत्री का जन्म हुआ है। उनके परिवार में यह पहली ही सन्तान थी। मनु इन लोगों के साथ जेल में एक परिवार की भांति रही थी। उनसे खूब घुल-मिल गई थी। सहज भाव से उसने सोचा कि इस नवजात बच्ची को उसे कोई भेंट देनी चाहिए। बस, वह भूलेश्वर गई और चांदी का प्याला और घुंघरू खरीद लाई। समय कम था, इसलिए वह स्वयं तो नहीं जा सकी, परन्तु किसीके हाथ ये दोनों चीजें उसने सुशीलाबहन के पास भिजवा दीं।

सुशीलाबहन ने इस बात की सूचना गांधीजी को दी। सुनकर वह बहुत क्रुद्ध हुए और उन्होंने तुरन्त शान्तिकुमार भाई को बुलाया और एक पत्र के साथ वे दोनों चीजें मनु के पास वापस भेज दीं। तबतक जहाज के चलने की सीटी हो चुकी थी। शान्तिकुमार भाई ने किसी तरह वह बंडल मनु को देते हुए कहा, "लो, यह बापूजी ने दिया है।"

मनु ने सोचा कि बापूजी ने उसके लिए कुछ भेजा है, क्योंकि उनको छोड़ते हुए उसे बहुत दुख हो रहा था। लेकिन जब उसने बंडल खोला, तो वह अवाक् रह गई। उसमें चांदी के प्याले और घूंघरू के साथ एक पत्र था। बापूजी ने लिखा था:

"चिरंजीव मनु,

तुझे अब 'मनु' कहने के बजाय मृदुलाबहन कहना चाहिए। अभी तो तूने बम्बई भी नहीं छोड़ा और आज्ञा भंग कर दी। इस तरह तू मेरी शिक्षाएं कितनी मानेगी? तूने स्वयं एक कौड़ी कमाई नहीं। उदार पिता मिल गये हैं, इसलिए उनका रुपया उड़ाती है। बच्ची को तू बिगाड़ना चाहती है? परन्तु मेरे देखते हुए तू उसे नहीं बिगाड़ सकती। चांदी के घुंघरू और प्याले तुझे शोभा दें तो तुझे मुबारक हों, अथवा तुझे न चाहिए तो तेरे जैसा कोई हो उसे दे देना। मेरी इच्छा तो यह है कि तू इन्हें अपनी मूर्खता के चिह्नस्वरूप संभालकर अपने पास रखना। प्याला और घुंघरू साथ में लौटा रहा हूं।

दु:खी बापूजी के राम-राम"

बच्ची को कुछ-न-कुछ देना ही चाहिए, ऐसी कुछ बुजुर्गों की राय थी, इसीलिए मनु ने उत्साह से ये चीजें खरीदी थीं। इसका इतना भयंकर परिणाम होगा, यह उसने सोचा भी न था। प्रायश्चित्त के रूप में उसने करांची पहुंचने तक उपवास किया और अपने मन को समझाया कि इसमें दुखी होने की कोई बात नहीं। यह तो जीवन का एक पाठ है।

: ५६ :

मेरा असली स्थान गांव में ही है

१६ जुलाई, १९३३ को साबरमती सत्याग्रह आश्रम के विसर्जन की घोषणा करते हुए गांधीजी ने बम्बई सरकार को लिखा कि वह उसे ग्रहण कर ले और जिस प्रकार चाहे उसका उपयोग करे। आश्रम के विसर्जन का अर्थ यह होगा कि प्रत्येक आश्रमवासी स्वयं चलता-फिरता आश्रम बन जायगा और वह जेल में या जेल से बाहर जहां भी होगा, आश्रम के आदर्श को आगे बढ़ाने के लिए जिम्मेदार होगा।

इसके बाद गांधीजी कुछ वर्षों तक वर्धा रहे। फिर सेवाग्राम चले गये। ३० अप्रैल, १९३६ की सुबह वह मगन-वाड़ी से सेवाग्राम के लिए पैदल ही रवाना हो गये। साथ में केवल चार कार्यकर्ता थे। लखनऊ-कांग्रेस के अवसर पर और उसके बाद नागपुर के हिन्दी साहित्य सम्मेलन में, जहां वह कुछ देर के लिए रुके थे, उन्होंने यही कहा था कि उनका

दिल तो गांवों में लगा हुआ है। "मैं सरदार से कब से कह रहा हूं कि मुझे वर्धा के पास किसी गांव में जाकर बसने दीजिये। उन्हें मेरी यह बात नहीं जंच रही है। भगवान ने चाहा तो शीघ्र ही मैं वहां चला जाऊंगा। जबतक मैं खुद जाकर किसी गांव में नहीं बस जाता तबतक मेरी बात का सही-सही असर नहीं होता।"

अब जब वह वहां जा रहे थे तब भी एक कार्यकर्ता ने उनसे पूछा, "बापू, क्या यह अधिक अच्छा नहीं होगा कि एक ही गांव के अन्दर इस तरह अपने-आपको दफना देने की अपेक्षा आप हरिजन दौरे की भांति सारे देश में ग्राम-संगठन के लिए घूमें।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "नहीं, इन दो कामों में कोई समानता नहीं है। हरिजन-कार्य में सिद्धान्त और व्यवहार मिले हुए थे। इस कार्य में मैं इन दोनों को नहीं मिला सकता। सिद्धान्त की बातें तो मैं इतने वर्षों से करता रहा हूं, परन्तु प्रत्यक्ष व्यावहारिक प्रश्नों को हाथ में लेकर उनको सुलझाये बिना केवल जबानी बातों से अधिक मदद नहीं मिलती। कल ही मैं सिंदी (एक गांव) गया था, यह देखने के लिए कि गजानन नाईक का काम कैसे चल रहा है। कोई बहुत अच्छी हालत नहीं है, फिर भी वह भिड़ा हुआ है। यदि मैं भी उसके साथ काम करता होता तो मुझे उसकी कठिनाइयों का कुछ परिचय होता। अब तो मैं इसी निश्चय पर पहुंच चुका हूं कि मेरा असली स्थान गांव में ही है।"

आ रही है तो आने दे। तू भी चलेगी ?

सन् १९३० की चौथी मई, रविवार का दिन और आधी रात का समय। नवसारी ताल्लुके के अन्तर्गत डांडी नामक स्थान से चार मील दूरी पर कराड़ी नाम का एक गांव है। वहां उस दिन दिनभर की चहल-पहल के बाद गांधीजी के सैनिक राष्ट्रीयशाला के आंगन में पड़े सो रहे थे। लगभग पौन बजे दो मोटर-लारियां फाटक पर कुएं के पास आकर खड़ी हो गई और उनमें से उतरकर चार-पांच व्यक्ति आंगन में घुस आये। लोग जग पड़े।

आम्रकुंज में पर्णकुटी से कुछ दूरी पर खुले मैदान में गांधीजी की चारपाई बिछी थी। पास ही दो बहनें चटाई बिछाये सो रही थीं। कोलाहल सुनते ही एक बहन उठ बैठी और दौड़ती हुई बापूजी के पास गई। बोली, "पुलिस आ गई है। शायद पकड़ने आई हो।"

सुनकर गांधीजी की नींद भी उचट गई, लेकिन वह सहज गम्भीर स्वर में बोले, "आ रही है तो आने दे। तू भी चलेगी ?"

और फिर आराम करने लगे। तभी सब लोग वहां इकट्ठे हो गये। पुलिस भी आ गई। मजिस्ट्रेट ने उनपर टार्च की रोशनी डालते हुए पूछा, "क्या आप मोहनदास

करमचन्द गांधी हैं ?"

उसी सहज गम्भीरता से गांधीजी ने उत्तर दिया, "हां।"

मजिस्ट्रेट बोला, "मैं सूरत जिले का जिला मजिस्ट्रेट हूं। बम्बई सरकार के आदेश पर आपको गिरफ्तार करने आया हूं।"

बड़ी शिष्टता से गांधीजी ने उनसे कुल्ला-दातौन करने की आज्ञा मांगी। फिर शान्त भाव से उन्होंने दांत साफ किये। इसी बीच वारंट में लिखे आरोपों की जानकारी ली। इसके पश्चात अपने पौत्र से बिस्तर मंगवाया। दो छोटे-छोटे झोलों में चश्मा, पोस्टकार्ड, पेंसिल और पूनी आदि चीजें भर लीं। तकली उनमें सबसे आवश्यक वस्तु थी। उसके बाद अपने पत्रों की फाइल मंगाकर 'यंग इण्डिया' और 'नव जीवन' के कागज-पत्र बालजीभाई देसाई के हवाले कर दिये और गायनाचार्य श्री खरे से कहा, "पण्डितजी, प्रार्थना बोलिये।"

पण्डितजी एकतारा लिये हुए पहले से ही तैयार थे। उन्होंने गान आरम्भ कर दिया। सभी खड़े होकर एक स्वर में प्रार्थना करने लगे। मजिस्ट्रेट ने दो-तीन बार 'जल्दी कीजिये', 'जल्दी कीजिये' कहा, लेकिन 'वैष्णव जन' के पश्चात 'रामधुन' पर आकर ही प्रार्थना समाप्त हुई। गांधीजी चप्पल पहनकर चलने के लिए तैयार हो गये। सबने उनके चरण स्पर्श किये। बा उस समय वहां नहीं थीं। किसीने उनसे कहा, "बापूजी, बा के लिए कुछ कहना है ?"

उच्च स्वर से उन्होंने कहा, "बा को क्या कहना है ! वह तो बहादुर औरत है !"

उसके बाद वह पुलिस की गाड़ी में जा बैठे और बात-ही-बात में आंखों से ओझल हो गये।

: ५८ :

इसे भरो तो सही

साबरमती-आश्रम अभी बन नहीं पाया था। गांधीजी उन दिनों अपने साथियों सहित कोचरब में एक बंगले में रहते थे। रास्ते के उस पार एक कुंआ था ! वहीं से वे सब लोग पानी भरते थे। नौकर तो वहां कोई था नहीं। सभी लोग मिल-जुलकर काम कर लेते थे।

एक दिन गांधीजी की तबीयत ठीक नहीं थी, लेकिन इस बात की चिन्ता किये बिना वह पानी भरने के लिए कुंए पर पहुंच गये। काका सा० कालेलकर कुंए से पानी खींच रहे थे। बोले, "बापूजी, आपकी तबीयत ठीक नहीं है। सबेरे आपने चक्की भी पीसी थी। अब आप थोड़ा आराम करें, पानी की चिन्ता न करें।"

लेकिन गांधीजी माननेवाले नहीं थे। काका भी आसानी से चुप हो जायं, तो उन्हें काका कौन कहे ! वह आश्रम गये और वहां जितने छोटे-छोटे बर्तन थे, उठा लाये और साथ ही सब बच्चों को भी बुला लाये। वह बर्तन में पानी भरते

और तुरन्त एक बच्चे को पकड़ा देते। बच्चे इतनी फुर्ती से आगे बढ़ते कि गांधीजी को बर्तन लेने का अवकाश ही न मिलता।

देर तक वह यह खेल देखते रहे, लेकिन उनकी बारी नहीं आई। वह वापस आश्रम लौटे। वहां बस बच्चों के नहाने का एक टब शेष था। उसीको काका के पास उठा लाये और बोले, "इसे भर दो।"

काका ने कहा, "आप इस टब को उठायेंगे ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "इसे भरो तो सही, फिर देखना, कैसे उठाता हूं !"

यह सत्याग्रही गांधी की जीत थी। हारकर काका ने एक छोटे बर्तन में पानी भरकर उनको दे दिया।

: ५६ :

फिर इसके मुंह पर घूंघट न चढ़े

एक व्यापारी भाई गांधीजी से मिलना चाहते थे। उनके पुत्र का अभी-अभी विवाह हुआ था। उनकी बड़ी इच्छा थी कि उनका पुत्र और उनकी पुत्र-वधू गांधीजी के चरणों में प्रणाम करके उनसे आशीर्वाद प्राप्त करें, लेकिन यह सब कैसे हो ? एक आश्रमवासी ने उनसे कहा, "बापूजी कल सबेरे जब घूमने के लिए निकलेंगे, उस समय आप वर-वधू-सहित इस रास्ते पर ही उनसे मिलियेगा।"

वह व्यापारी भाई अब भी डर रहे थे कि कहीं गांधीजी उनसे बिना मिले ही तो आगे न बढ़ जायं। लेकिन आश्रम-वासी ने उन्हें आश्वस्त कर दिया और वे दूसरे दिन ठीक समय पर गांधीजी के आने के मार्ग पर आकर खड़े हो गये।

ठीक समय पर उन्हें दूर से खिलखिलाहट की आवाज सुनाई दी। दूसरे ही क्षण उस दिशा में देखा तो पाया कि गांधीजी तेज चाल से चले आ रहे हैं। वह व्यापारी के सामने आये। वर-वधू ने साहस करके उनके चरण छुए। गांधीजी ठिठके। फिर उन्होंने बड़े स्नेह से उनकी पीठ पर हाथ फेरा, लेकिन यह क्या! वधू के मुंह पर तो घूंघट था। गांधीजो तो भारत को मुक्त करना चाहते थे। वह इस घूंघट को कैसे सह सकते थे! उन्होंने वधू के मुख पर से घूंघट हटा दिया और व्यापारी भाई की ओर देखते हुए कहा, "इस बाला के मुख पर का घूंघट मैं आज से हटाता हूं। इसका मुख हमेशा ऐसा ही प्रसन्न रहना चाहिए। फिर इसके मुख पर घूंघट न चढ़े, इस बात का ध्यान रखना आपका काम है।"

उस धनी व्यापारी ने प्रणाम करते हुए कहा, "आपकी आज्ञा का पालन होगा, महात्माजी। आप इन्हें आशीर्वाद दीजिए।"

गांधीजी बोले, "जो अच्छे काम करता है, उसपर भग-वान के आशीर्वाद हमेशा बरसते हैं।"

इतना कहकर उन्होंने वधू की पीठ पर प्रेम से एक मीठी चपत लगाई और फिर आगे बढ़ गये।

मैंने आपके शहजादे का बहिष्कार नहीं किया

भारत के भाग्य का निर्णय करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने जो गोलमेज परिषद बुलाई थी, उसमें भाग लेने के लिए भारत के अनेक विज्ञ पुरुष और राजनेता इंग्लैंड गये थे। वे सभी सम्राट की सरकार के मेहमान थे। जैसा कि सदा होता था, इस बार भी उनके सम्मान में बकिंघम महल में एक समारोह आयोजित किया गया। ऐसे अवसरों पर ही ब्रिटेन के सम्राट प्रतिनिधियों से मिल सकते थे।

इस परिषद में विद्रोही गांधी भी प्रतिनिधि बनकर गए थे। इस समारोह में सम्मिलित होने की उनकी एक शर्त थी। वह शर्त यह थी कि वह वही कपड़े पहनकर आयेंगे, जो वह सदा भारत में पहना करते हैं।

ऐसा ही हुआ भी। हमेशा की तरह घुटनों तक की धोती और पांव में चप्पल पहनकर ही गांधीजी ने शाही महल में प्रवेश किया। उस दिन युगों पुरानी प्रथा टूट गई।

बादशाह जार्ज गांधीजी से प्रसन्न नहीं थे। वह उनसे मिले अवश्य, लेकिन उनकी बातें बड़ी अटपटी थीं। परन्तु गांधीजी तो शिष्टता और नम्रता की प्रतिमा थे। उन्होंने बादशाह की बहुत-सी बातों का उत्तर ही नहीं दिया। एक

बार बादशाह ने कहा, "आपने मेरे शहजादे का बहिष्कार क्यों किया था ?"

गांधीजी बोले, "मैंने आपके शहजादे का बहिष्कार नहीं किया, बल्कि ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त प्रतिनिधि का बहिष्कार किया था ।"

इसके बाद वे दोनों औपचारिक बातें करते रहे, लेकिन विदा के समय बादशाह इस विद्रोही फकीर को चेतावनी देना न भूले । बोले, "मि० गांधी, एक बात याद रखिये, आज से आप मेरे साम्राज्य पर प्रहार करना बन्द कर दीजिये । किसी भी देश में होनेवाला बलवा बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। उसे दबाकर सरकार का काम चालू रखना ही होगा ।"

गांधीजी तनिक भी विचलित नहीं हुए । बड़ी विनम्रता से उत्तर दिया, "आप यह आशा तो नहीं रखते होंगे कि आपके मेहमान के नाते मैं राजनैतिक प्रश्न पर आपसे दलील करूं ?"

: ६१ :

जीवन में स्वच्छता और सफाई से बड़ा और कौनसा काम है ?

एक बार गांधीजी बिरला-भवन में ठहरे हुए थे । नहाने के लिए जाने लगे तो पाया कि घनश्यामदासजी बिरला

अन्दर हैं। उनके बाहर आने पर ही वह अन्दर जा सके। देखा कि वहां बिरलाजी की गीली धोती पड़ी हुई है।

कोई और व्यक्ति होता तो उसे परे हटाकर नहा लेता, लेकिन गांधीजी तो गांधीजी थे। उन्होंने उसे धो डाला। उसके बाद वह नहाने के लिए बैठे। नहाने के बाद उन्होंने अपनी लंगोटी भी धोई। दोनों कपड़ों को लेकर वह बाहर आये। उन्हें रस्सी पर सुखाने के लिए वह फैला रहे थे कि तेजी से बिरलाजी वहां आ पहुंचे। बोले, "बापूजी, बापूजी, आप यह क्या कर रहे हैं! आपने मेरी धोती क्यों धोई?"

स्पष्ट ही बिरलाजी की वेदना का कोई पार नहीं था। लेकिन गांधीजी सहज भाव से बोले, "धोती मैंने धो डाली तो इसमें बिगड़ क्या गया! भीतर पड़ी हुई थी। उसपर किसीके मैले पैर पड़ते। मैंने धोकर साफ कर दी, अच्छा ही हुआ न?"

बिरलाजी गिड़गिड़ाए, "बापूजी, आप जैसे महापुरुष ने मेरी धोती धो डाली!"...

वह आगे और कुछ कह न सके। अपनी लापरवाही पर वह बुरी तरह पछता रहे थे। गांधीजी ने कहा, "जीवन में स्वच्छता और सफाई के काम से बड़ा और कौन-सा काम है?"

भूख लगी है ?

आश्रम में दक्षिण भारत का एक लड़का रहता था। एक बार उसे पेचिश हो गई। जैसा कि गांधीजी का नियम था, उसकी देखभाल भी वह स्वयं ही करते थे। उसे उबला हुआ खाना देते और समय पर दवा देने का ध्यान रखते।

जब वह लड़का ज़रा अच्छा हुआ तो उसे कॉफी की याद आने लगी, पर आश्रम में तो कोई कॉफी पीता नहीं था। एक दिन बेचारा लेटा-लेटा कॉफी की कल्पना कर रहा था कि गांधीजी आ गये। बोले, "अरे, अब तो तुम पहले से अच्छे मालूम होते हो। भूख लगी है? क्या खाओगे? दोसा ?"

लड़के की आंखें चमक उठीं। धीरे-से बोला, "बापूजी, क्या मैं कॉफी पी सकता हूं ?"

गांधीजी बड़े जोर से हँसे। बोले, "तो यह बात है ! लेकिन मैं तुम्हें कॉफी पिलाऊंगा। हां, दोसा नहीं मिल सकता। गर्म टोस्ट मिल सकता है।"

यह कहकर गांधीजी चले गये। लड़का बड़ा हैरान हुआ। उसे लगा, जैसे गांधीजी उसके साथ मजाक कर रहे हों। कहीं गांधीजी भी कॉफी पिला सकते हैं ? लेकिन थोड़ी देर बाद क्या देखता है कि गांधीजी चले आ रहे हैं। हाथ में

रूमाल से ढकी एक थाली है। पास आकर बोले, "लो भाई, अपनी कॉफी और टोस्ट। अपने हाथ से बनाकर लाया हूं। देखो तो, तुम दक्षिणवालों से अच्छी बनी है?"

लड़का घबरा गया। बोला, "बापूजी, आप! आपने किसीसे कह क्यों नहीं दिया? आपने क्यों तकलीफ की?"

गांधीजी ने प्यार से उसके गाल पर चपत लगाई और कहा, "कॉफी पिओ। ठंडी हो जायगी।"

●

संदर्भ

इस पुस्तक के प्रसंग जिन पुस्तकों से सम्पादित रूप में लिये गए हैं, उनकी संख्या लेखकों के नाम सहित साभार नीचे दी जा रही है :

आत्मकथा (गांधीजी) २७, ४६,
इंग्लैंड में गांधीजी (महादेव देसाई) ३
एकला चलोरे (मनुबहन गांधी) ८, ३०
ऐसे थे बापू (आर० के० प्रभु) २५
ए गांधियन पेट्रियार्क (माधोप्रसाद) ५,
गांधी : व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव (संकलन) महादेव देसाई ५०
गांधीजी (संपा० जी० डी तेंदुलकर) ३६,
गांधीजी : एक झलक (श्रीपाद जोशी) ४४
गांधीजी की यूरोप-यात्रा (कुमारी म्यूरियल लेस्टर) ३४,
गांधीजी के पावन प्रसंग (लल्लूभाई मकनजी) ५१, ५८, ६०, ६१
गांधीजी के संपर्क में (सं० चन्द्रशंकर शुक्ल) २, ११, ४०,
गांधीजी के संस्मरण (संकलित, आकाशवाणी) ७, १७, १८, १९, २०, २१, २२, २३

जीवन-प्रभात (प्रभुदास गांधी) ३९,
बा और बापू (मुकुलभाई कलार्थी) २६, ४७
बा और बापू की शीतल छाया में (मनुबहन गांधी) ९, २४, ५५
बापू-कथा (हरिभाऊ उपाध्याय) ५६
बापू का संदेश (परशुराम) ५७
बापू की छाया में (बलवंतसिंह) ६, ३१

बापू की ये बातें, भाग १ (मनुबहन गांधी) ४५, ४६
बापू के आश्रम में (हरिभाऊ उपाध्याय) ४, १४, १५, ३२
बापू रो पड़े (लेख महावीर त्यागी) ४१
बापू-संस्मरण (संकलन) रामकृष्ण बजाज ३३, ५८
बाल भारती (अक्तू. १९६९) विष्णु प्रभाकर ६२
बिहार की कौमी आग में (मनुबहन गांधी) २६
महादेवभाई की डायरी भाग २ (महादेव देसाई) ३५
" " भाग ३ (" ") १०, २८, ४३
" " भाग ५ (" ") ५२
मेरे जेल के अनुभव (गांधीजी) १६
विश्व ज्योति (अप्रैल १९६९) ५३
विश्ववाणी (जन. ४६) ५४
सम्पूर्ण गांधी वांड्मय (संकलन) ४८
हरिजन सेवक (संपा० महादेव देसाई) १, १२, १३, ३७, ४२
हिन्दी-नवजीवन (१९३७) ३८

●

सस्ता साहित्य मंडल ● श्री कृष्ण जन्म-स्थान सेवा-संस्थान ● संयुक्त प्रकाशन

इस माला की पुस्तकें

□

भारत सरकार द्वारा रियायती मूल्य ...